कुँवर नारायण का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1.1 कुँवर नारायण का सामान्य परिचय एवं व्यक्तित्व

मानव व्यक्तित्व के विषय में जब हम विचार करते हैं तो कई तथ्य सामने आते हैं। और, वे तथ्य हमारे मन में कई सवाल पैदा करते हैं। मसलन व्यक्तित्व से क्या तात्पर्य है? किसी के व्यक्तित्व का निर्धारक क्या है? उसके निर्माण में किसकी भूमिका सर्वाधिक होती है? आदि-आदि।

व्यक्तित्व का अंग्रेजी पर्याय 'पर्सनालिटी' है। 'पर्सनालिटी' शब्द का निर्माण लैटिन शब्द 'पर्सोना' से हुआ है, ग्रीक भाषा में 'पर्सोना' का अर्थ 'मुखौटा' है, जिसका संबंध प्राचीन रोमन नाटकों से है। 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार "व्यक्तित्व का अध्ययन मानव के चरित्र की विभिन्नताओं की खोज करना और उसके बारे में बताना माना जाता है। व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के व्यवहार को विश्लेषित करने में किया जाता है। सामान्यतः व्यवहार और वार्तालाप में व्यक्ति के व्यक्तित्व की जो व्याख्या आती है, उसमें अत्यन्त व्यक्तिगत, अनौपचारिक अज्ञात विश्वसनीयता एवं प्रमाणिकता होती है।"[1]("The study of personality as it is treated here is an effort to identity and describe distinctive human characteristics and to apply there in prediction the behavior of people, description of personality made in ordinary conversation are often highly personal, informal and unknown reliability and validity." इस प्रकार 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व का संबंध व्यक्ति के व्यवहार के विश्लेषण से है। इस व्यक्तित्व का संबंध व्यक्ति की चेतना, उसकी अभिरुचि आदि से है।

कुँवर नारायण के काव्य-लेखन पर उनके व्यक्तित्व का असर साफ़ तौर पर महसूसा जा सकता है। जिस संयत भाषा-शैली का प्रयोग वे अपनी कविताओं में करते हैं वह उनके व्यक्तित्व का हिस्सा है। उनकी कविताएँ जिन उदात्त मूल्यों का वहन करती हैं, अपने व्यक्तिगत जीवन में भी कुँवर जी उन मूल्यों के पोषक रहे हैं। बकौल भारती नारायण- "उनके व्यक्तित्व में जो सादगी, संवेदनशीलता और सौम्यता है, वह उनकी कविताओं में भी परिलक्षित होती है।"[2]कुँवर जी को नज़दीक से जानने वाले विद्वानों का इस संदर्भ में एकमत रहा है कि वे किसी भी वाद या विचारधारा के कट्टर समर्थक कभी नहीं रहे। दो विपरीत विचारों के बीच संवाद के मार्ग को कुँवर जी ने हमेशा सराहा है।यह संवादधर्मिता कुँवर जी की कविताओं में भी देखने को मिलती है। कुँवर जी की कविताओं में जीवन-दृष्टि एवं मूल्य-बोध पर शोध-कार्य की पूर्णता के लिए यह आवश्यक है कि कुँवर जी के जीवन और व्यक्तित्व पर भी शोध-दृष्टि डाली जाए। ग़ौरतलब है कि कुँवर जी की कविताओं में उनके व्यक्तित्व को और व्यक्तित्व में उनकी कविताओं को आसानी से लक्षित किया जा सकता है।बकौल कुँवर नारायण-

"जो भी रचा है मैंने

उसी का हिस्सा हूँ :

पूरी तरह मौजूद हैं उसमें

मेरे अंतर्विरोध और मेरा अंतःकरण :

हर तरह उत्तरदायी हूँ

अपनी रची दुनिया के लिए : अवगत हूँ उन तमाम कमियों और अतियों की

निरंतर आवाजाही से

जिनके लिए छूट गई हैं गुंजाइशें

मेरे अज्ञान या मेरी लापरवाही से!

xxxxxxxxxxxxxx

स्वीकार करता हूँ

कि मेरी ही तरह

मेरी दुनिया भी

मानवीय है।"[3]

➢ **कुँवर नारायण का प्रारंभिक-जीवन एवं पारिवारिक परिवेश :**

कुँवर का जन्मस्थान फैजाबाद(उत्तर प्रदेश) है, तथा जन्मतिथि उन्नीस सितम्बर उन्नीस सौ सत्ताइस है। कुँवर नारायण ने बचपन में मौत की त्रासदी को काफी निकट से महसूस किया था। जब बहुत कम समय के अंतराल पर पहले उनकी माँ फिर बड़ी बहन की मृत्यु हो गयी। अपने कई साक्षात्कारों में भी कुँवर जी ने इस बात का ज़िक्र किया है कि चूँकि माँ की मृत्यु के बाद बहन ने ही उन्हें संभाला था और वह उनसे बहुत स्नेह रखती थीं, इसलिए बहन की मृत्यु ने कुँवर जी को अंदर तक झकझोर दिया। यह कुँवर जी के लिए एक अपूरणीय क्षति थी। मानसिक त्रासदी के इस वक्त में संयुक्त परिवार में रहने की वजह से कुँवर जी कुछ हद तक संभल सके। मृत्यु का यह संत्रास उनकी कई कविताओं में भी देखने को मिलता है। इस पारिवारिक त्रासदी का असर उनके जीवन और उनकी कविता दोनों पर है। अपनी डायरी में बचपन के दिनों को याद करते हुए कुँवर जी लिखते हैं, "मेरा बचपन अलग तरह की परिस्थितियों में बीता। बहुत बचपन में मेरी माँ की मृत्यु, फिर साल भर के अन्दर ही बड़ी बहन – जिससे मैं बहुत निकट था, की मृत्यु...और इसके बाद मैं अपने पिता के साथ भी कभी नहीं रह पाया। लखनऊ में अपने चाचा के साथ ही रहा। इस पारिवारिक ट्रेजडी ने ज़रूर मुझे बचपन में ही बहुत अकेला कर दिया।"[4] कालांतर में कुँवर नारायण के व्यक्तित्व में जिस संकोची स्वभाव को हम पाते हैं, उसके पीछे कहीं न कहीं यह अकेलापन भी ज़िम्मेदार रहा होगा। उन्होंने अपने कई साक्षात्कारों में भी इस बात बात का ज़िक्र किया है कि माँ और बहन की मृत्यु का असर उनकी चेतना पर किस हद तक हुआ था। परिवार ने उन्हें मृत्यु-बोध से उपजे इस अकेलेपन से उबरने में मदद की जिसके लिए वे परिवार के प्रति

जीवन के अंतिम समय तक कृतज्ञ रहे। अपने जीवन में परिवार के महत्त्व को स्वीकारते हुए कुँवर नारायण ने लिखा है कि "हम कई चचेरे भाई-बहन एक साथ पल गए।सब साथ, पर बहुत अलग भी। मुझे लगता है कि, जो हम एक बहुत बड़ा बेगानापन (ऐलियेनेशन) अनुभव करते हैं, अपने व्यक्तिगत जीवन में, उसके पीछे कहीं न कहीं पारिवारिक जीवन के टूटने की वजह भी होती है। पारिवारिक जीवन के लिए एक ख़ास तरह का लगाव महसूस करता हूँ, आज भी। ये एक ऐसी इकाई है, जिसके द्वारा हम परायी उपस्थिति को आत्मीय करके ग्रहण करते हैं। उस समय यदि एक सम्मिलित परिवार की घनिष्ठता और सगापन न मिलता, तो शायद इसका दूसरी तरह का असर पड़ता मेरे ऊपर। इस तरह साथ रहने ने मुझे कहीं व्यवस्थित भी किया।"[5]

कुँवर नारायण अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में संकोची स्वभाव के थे। उन्होंने अपनी डायरी में इस बात का ज़िक्र भी किया है कि वे अंतर्मुखी स्वभाव के थे। उन्हें विद्यालय में मन के अनुकूल दोस्त कभी नहीं मिले, संभवतः इसलिए उनके मन में विद्यालय के प्रति एक अरूचि का भाव था। पढ़ने में रुचि होने के बावजूद विद्यालयी परिवेश उन्हें आकर्षित नहीं करता था। 'दिशाओं का खुला आकाश' में अपने विद्यालयी जीवन को याद करते हुए उन्होंने लिखा है- "शुरू से ही संकोची और अंतर्मुखी स्वभाव का था। स्कूली जीवन मुझे कभी पसंद नहीं रहा था - साथियों की रुचियाँ और मानसिकताएँ मेरे मन के अनुकूल नहीं पडतीं थीं। कॉलेज, यूनिवर्सिटी में मेरी रुचि के साथी ज़रूर मिले किन्तु, पूरी तरह स्कूली या विश्वविद्यालयी जीवन के साथ अपने को कभी समायोजित नहीं कर पाया।"[6] हालाँकि विश्वविद्यालयी जीवन का उनका अनुभव अपेक्षाकृत बेहतर रहा है। यहाँ उन्हें कुछ दोस्त भी ऐसे मिले जिनसे स्तरीय वैचारिक गुफ़्तगू की जा सके। रघुवीर सहाय से उनकी दोस्ती विश्वविद्यालय के दिनों में ही हुई थी। लखनऊ की यादें कुँवर नारायण की ज़िन्दगी में कुछ इस तरह शामिल रही हैं कि वे कई वर्ष महानगर में बिताने के बावजूद लखनऊ को नहीं भूल पाये। लखनऊ की उदार साहित्यिक,राजनीतिक बहसों की कमी वे दिल्ली में अंत तक महसूस करते रहे। लखनऊ के दोस्तों की आत्मीयता उन्हें बार-बार अतीत

की ओर खींचती है। 'दिशाओं का खुला आकाश' में वे लखनऊ के विषय में लिखते हैं- "मेरा आधा से अधिक जीवन लखनऊ में बीता है।उसकी तमाम प्रिय-अप्रिय यादें मेरे अन्दर रची-बसी हैं।हम भले ही एक जगह को छोड़ दें, पर वह जगह हमें नहीं छोड़ती।...लखनऊ में रहते हुए उसके अतीत से एक बातचीत-सी है। समीप और सुदूर के अन्तर को मिटाती हुई-सी वह वर्तमान और अतीत को एक साथ जीती है। ऐसी मेरी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें मैं वर्तमान को अतीत की दिशा में विस्तृत करता हूँ-उसे एक अतिरिक्त आयाम देने के लिए"[7]

कुँवर नारायण ने अपनी ज़िन्दगी के प्रारंभिक दौर का एक बड़ा हिस्सा अयोध्या, फैजाबाद और लखनऊ में बिताया है। और, जब कालांतर में वे दिल्ली में रहने लगे तब भी उनकी स्मृति से उन शहरों की यादें कभी ओझल नहीं हुईं, जहाँ वे बड़े हुए। ध्यातव्य है कि कुँवर जी का परिवार व्यवसाय से जुड़ा था। वे स्वयं भी स्पीड मोटर्स के डायरेक्टर्स में से थे। स्पीड मोटर्स लखनऊ की सबसे बड़ी कार एजेंसी थी जिसके पास अपना गैरेज भी था, स्पीड फाइनेंस कॉर्पोरेशन भी था। परन्तु कुँवर जी का मन व्यवसाय में कभी नहीं रमा।आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेन्द्र देव जैसे विद्वानों का उनके घर आना-जाना था। साहित्य, कला, और संस्कृति की ओर कुँवर नारायण की रुचि पैदा करने में इन विद्वानों का विशेष महत्त्व है जो कुँवर जी के घर बराबर आया-जाया करते थे।

- **पढ़ने लिखने के प्रति रुचि और साहित्य के प्रति झुकाव:**

कुँवर नारायण इंटर तक विज्ञान के विद्यार्थी रहे बाद में आर्ट्स के छात्र हो गये। इंटर के बाद बीमारी की वजह से उनकी पढ़ाई लगभग एक साल तक बाधित रही।इस दौरान वे नरेन्द्र देव के साथ जुहू में रहे। यह समय उनके जीवन में विचारों के निर्माण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा। इन्होंने सन् 1951में स्नातकोत्तर की उपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में प्राप्त की। समकालीन हिंदी कविता से उनका पहला परिचय भी इसी दौरान हुआ। इन दिनों रघुवीर

सहाय उनके सहपाठी हुआ करते थे। रघुवीर सहाय ने ही उन्हें अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षण भर' की कविताएँ पढ़कर सुनायी। इन कविताओं को सुनते हुए कुँवर जी को ऐसा लगा कि यह उनकी रुचि का क्षेत्र हो सकता है। बाद के दिनों में उनकी अज्ञेय से भेंट भी हुई और बाद के वर्षों में उनका सन्निद्धय भी प्राप्त हुआ। अज्ञेय से उनकी पहली मुलाक़ात सन् 1950 के आसपास ऑल इंडिया रेडियो के दिल्ली केंद्र पर हुई। इस मुलाक़ात का भी ज़रिया बने रघुवीर सहाय। यह मुलाक़ात लखनऊ आने पर पुनः मिलने की बात पर समाप्त हुई थी। इस मुलाक़ात से बाद का ज़िक्र करते हुए अपने संस्मरण में कुँवर नारायण लिखते हैं, "नहीं, पर बात समाप्त नहीं हुई लखनऊ आए तो मिले और यह सिलसिला आगे बढ़ता गया। लखनऊ आते तो मेरे ही साथ ठहरते।यह मेरे लिए एक सुखद संयोग था।"[8] अज्ञेय जी के साथ अपने बिताये पल को कुँवर जी जिस आत्मीयता से याद करते हैं, वह उनके संबंधों का पता देती है।

एम.ए. के दिनों में कुँवर नारायण ने अंग्रेजी भाषा में भी कविताएँ लिखी थीं, परन्तु उसे कभी छपवाया नहीं। कुँवर नारायण की हिंदी की भी कई कविताएँ ऐसी हैं जो आज भी उनकी डायरी में लिखी हुई हैं लेकिन उन्होंने उसे कभी छपवाया नहीं। ऐसा भी नहीं है कि वे कविताएँ छपने योग्य नहीं हैं! चूँकि कुँवर नारायण छपास की प्रवृत्ति से दूर रहे इसलिए अपनी कविताओं के प्रति इतने निर्मम हो सके। कुँवर नारायण को जानने वाले विद्वान तो यहाँ तक कि वे कविताएँ जो प्रकाशित हुई हैं उनमें भी कई कविताओं को कुँवर जी ने दो से तीन बार संशोधन के बाद छपने भेजा। कुँवर जी ने कविता के लेखन में कभी जल्दबाजी नहीं की। कई-कई किताबें वे एक साथ पढ़ते थे। कई किताबें एक साथ लिखते थे, पर कभी किसी कविता को पूरी करने के लिए हड़बड़ी नहीं दिखाई। प्रेमकुमार के साथ अपनी बातचीत में कुँवर जी कहते हैं, "लेखन के साथ मैं जोर-ज़बरदस्ती नहीं करता- यद्यपि लिखना मेरी आन्तरिक मजबूरी है। धीरज रखता हूँ, कविता के साथ जल्दबाजी नहीं चलती। मैं अनन्तकाल तक धीरज रख सकता हूँ।"[9]

इस दौरान लखनऊ लेखक संघ की बैठकों में इनकी सक्रिय भागीदारी रही। सन् 1952में सर्वप्रथम 'प्रतीक' में इनके द्वारा किए गये काव्यानुवाद का प्रकाशन हुआ। इनके द्वारा लिखी गयी कविता भी सर्वप्रथम 'प्रतीक' में ही छपी। सन् 1954 में एक वर्ष तक दिल्ली में रहकर आचार्य कृपलानी की 'विजिल' पत्रिका में सहयोग किया। सन् 1955में पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, रूस और चीन की यात्रा तथा इस यात्रा के दौरान वार्सा में नाज़िम हिकमत, एन्टन स्वानीम्स्की तथा पाब्लो नेरुदा से हुई भेंट को इनके जीवन के निर्णायक पड़ावों के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। सन् 1956 में प्रथम काव्य-संग्रह 'चक्रव्यूह' प्रकाशित हुआ। 'युगचेतना' और 'नया प्रतीक' जैसी पत्रिकाओं के सम्पादन से सम्बद्ध रहे। सन् 1956-1960 तक 'युगचेतना' के संपादक का दायित्व निभाया। सन् 1975-1978 तक की अवधि में 'नया प्रतीक' के सम्पादकीय विभाग से जुड़े रहे। इसके साथ ही कुछ वर्षों (1976-1979) तक उत्तर प्रदेश राज्य संगीत अकादमी के उपाध्यक्ष का पद भी संभाला। साथ ही कुछ समय के लिए भारतेन्दु नाट्य केंद्र, लखनऊ के अध्यक्ष पद को ग्रहण करने का भी इन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ।

- **कुँवर जी के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया:**

कुँवर नारायण जैसे वृहत व्यक्तित्व का निर्माण एक दिन में संभव नहीं है। कई कवियों, लेखकों, समाज सुधारकों, दर्शनशास्त्रियों और पुस्तकों का योगदान कुँवर जी के व्यक्तित्व निर्माण में है। जीवन के प्रारंभिक वर्षों से ही आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी तथा डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे विद्वानों के सान्निध्य ने कुँवर जी की वैचारिक चेतना को विस्तार दिया और सोच के दायरे को विस्तार दिया। वर्ष 1946 में जब वे जुहू (मुम्बई) में आचार्य नरेन्द्र देव के साथ रह रहे थे, इस दौरान नरेन्द्र देव ने समाजवाद, मार्क्स और बौद्धधर्म के विषय में जो जानकारियाँ उनसे साझा की उसने कुँवर नारायण के भविष्य के अध्ययन की ज़मीन को मजबूत किया। उन दिनों से हासिल का ज़िक्र करते हुए कुँवर नारायण कहते हैं कि "यह बात कहीं गहरे मन में आज तक बैठी हुई है पढ़ने लिखने की दुनिया में पूरब पश्चिम, उत्तर दक्षिण आज और कल नहीं होता। ज्ञान

का वह पूरा भण्डार होता है। जिसे मनुष्य जाति ने सदियों में हासिल किया है।"[9]आगे चलकर जब आचार्य नरेन्द्र देव जैसे विद्वान् को अयोध्या से चुनाव हारते देखा तो उन्होंने राजनीति के दुर्भाग्यपूर्ण यथार्थ को जाना। हालाँकि इससे पहले भी उनके जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी हुई थी जिसने उन्हें आश्चर्यचकित किया और जिनसे वे दुःखी भी हुए। राजनीतिक यथार्थ से जुड़ा एक वाकया उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्त से संबंधित है। चंद्रभानु गुप्त जो सन् 1955 के आस-पास उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे और कुँवर जी के परिवार के साथ उनके अच्छे संबंध थे।उन्हें कुँवर जी का लेखक संघ की बैठकों में शामिल होना और लखनऊ के कॉफ़ी हाउस में समय बिताना पसंद नहीं था। जब पहली बार कुँवर नारायण पोलैंड, रूस और चीन की यात्रा पर जा रहे थे उससे पहले चंद्रभानु गुप्त ने उन्हें अपने आवास पर बुलाकर डराने की हद तक समझाया कि यह यात्रा करना उनके भविष्य के लिए सही नहीं है। कुँवर नारायण उस पल को याद करते हुए कहते हैं "लेकिन मेरे जिस तरह के भविष्य की उन्हें चिन्ता थी उस भविष्य में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी।"[10]

कुछ वर्षों बाद जब भारत और चीन का युद्ध छिड़ा था, तब सरकार ने उन संदिग्ध लोगों की एक सूची बनायी थी जिनका कम्युनिस्ट देशों से सम्पर्क था। इस सूची में कुँवर नारायण का भी नाम था यह सूचना उन्हें चंद्रभानु गुप्त ने ही दी थी, चूँकि मामला राजनीतिक के साथ-साथ पारिवारिक भी था इसलिए उन्होंने कुँवर जी को बुलाकर इस बात की सूचना देते हुए पूछा- "'क्या कहना है तुम्हें' उन्होंने पूछा। मैंने कहा – "इसमें कहना क्या है! इस समय देश में संकट है। ऐसे हर व्यक्ति को जेल में बंद कर देना चाहिए जो देश की सुरक्षा के लिए ख़तरा हो!"...मैं कहता रहा, "मुझे भी एक शक है।इसमें अगर मेरे जैसे लोग 'सन्दिग्ध' हैं तो यह सूची ख़ुद बिल्कुल 'सन्दिग्ध' है! देश को बचाना है तो पहले सही सूची बनाना तो हम सीखें, वरना हम देश को नहीं बचा पाएँगे, सिर्फ़ कुछ गलत व्यक्तियों की बलि देकर रह जाएँगे।"[11] इस घटना ने राजनीतिक तौर-तरीकों के प्रति कुँवर नारायण के अविश्वास को दृढ़ किया।

कुँवर जी के व्यक्तित्व के विकास में पुस्तकों का जितना योगदान रहा है उतना ही उन विद्वानों के सत्संग का का भी रहा है जो उन्हें लखनऊ के कॉफ़ी हाउस से लेकर विदेशों तक में लगातार मिलता रहा। हालाँकि वे अंग्रेजी के विद्यार्थी थे परन्तु उनके सम्पर्क का दायरा बहुत व्यापक था। ज्ञान की समृद्ध विरासत के क़रीब रहने का सौभाग्य कुँवर जी को मिला और इसका परिणाम यह हुआ की कुँवर जी की वैचारिक चेतना का बहुआयामी विकास हुआ। अपने लखनऊ के दिनों को याद करते हुए कुँवर नारायण कहते हैं,"साहित्य में अनौपचारिक बैठकों का ख़ासा महत्त्व रहा है।...मुझे याद पड़ता है लखनऊ कॉफी हाउस में हम हिन्दी साहित्यकारों की ही मेज़ पर नहीं बल्कि कभी डॉ. लोहिया, डॉ. केस्कर, डॉ. सी.पी.मिश्रा, मजाज़, सज्जाद जहीर साहब आदि के साथ भी बैठा करते थे। यूनिवर्सिटी में भी हम अक्सर अपनी अंग्रेज़ी की क्लास छोड़कर अर्थशास्त्र के डॉ. राधाकमल मुखर्जी और प्रो. डी. पी. मुखर्जी की क्लासों में जाकर बैठ जाते थे। बाद में फिल्म, नाटक, संगीत आदि के लोगों से जुड़ने का जो सुअवसर मिला, उसे मैं मूल्यवान मानता हूँ।"[12]कुँवर जी अपनी ज़िन्दगी के महत्वपूर्ण पड़ावों का जब भी ज़िक्र करते हैं, उनके पहले विदेश दौरे का ज़िक्र ज़रूर आता है। यह मौक़ा था ज्ञान की एक नयी परंपरा से रू-ब-रू होने का। कविता के प्रति जिस आकर्षण का बीज कुँवर जी के मन में 'हरी घास पर क्षण भर' की कविताओं को सुनकर अंकुरित हुआ था, पाब्लो नेरूदा, नाज़िम हिकमत और एंटन स्लोनिस्मकी जैसों से मुलाक़ात ने उसे पुष्पित और पल्लवित कर दिया। ध्यातव्य है कि आगे चलकर कुँवर नारायण ने जो कविताएँ रचीं वह भी सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक सिद्ध हुईं। उनकी कविताओं में विश्व-मानव की जो एक संकल्पना दिखाई देती है, वह उनकी उस विचार प्रणाली का द्योतक है जो ज्ञान के क्षेत्र में आज और कल, देश और विदेश, भारतीयता और पाश्चात्य का भेद नहीं मानता।कविता के प्रति अपने आकर्षण में विदेश दौरों का महत्वपूर्ण योगदान स्वीकारते हुए वे कहते हैं, "उन्नीस सौ पचपन में मैंने पोलैंड, रूस और चीन की यात्रा की थी, और वारसा में मुझे पाब्लो नेरूदा, नाज़िम हिकमत और एंटन स्लोनिस्मकी से मुलाक़ात का अवसर मिला

था।इस उम्र में ये मुलाक़ातें मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण थीं।इसने कविता के प्रति मेरे आकर्षण को और बढ़ा दिया।"[13]

➢ कुँवर नारायण द्वारा सृजित साहित्य:

काव्य-संग्रह-

- 'चक्रव्यूह' (1956) : यह कुँवर नारायण का पहला काव्य-संग्रह है।इस संग्रह में चार खंड हैं जिनका उपशीर्षक है- लिपटी परछाइयाँ, चिटके स्वप्न, शीशे का कवच, चक्रव्यूह। अगर हम कविता के कथ्य को देखें तो अपने पहले ही काव्य-संग्रह में कुँवर जी एक विश्वकवि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। यहाँ जीवन की जटिलताओं से संघर्ष करते हुए कवि उदात्त जीवन-दृष्टि की ख़ोज के लिए प्रतिबद्ध नज़र आते हैं।
- 'परिवेश : हम-तुम' (1961) : इस संग्रह की कविताएँ 'चक्रव्यूह' की कविताओं से रूप और कथ्य दोनों ही स्तरों पर भिन्न हैं। 'चक्रव्यूह' की कविताओं में जहाँ द्वंद्व है, जटिलता है वहीं इस काव्य-संग्रह में प्रेम और प्रकृति से जीवन की संबद्धता को सहज भाषा शैली में व्यक्त किया गया है। 'परिवेश हम-तुम' का कवि उपभोक्तावादी मानसिकता तथा यांत्रिक जीवन-शैली का प्रतिपक्ष रचता है।
- 'आत्मजयी' (1965) :'आत्मजयी' एक प्रबंध काव्य है, जिसका आधार कठोपनिषद का 'नचिकेता प्रसंग' है। पौराणिक कथा पर आधारित होने के बावजूद यह काव्यकृति चिरंतन मूल्यों का संधान करती है। इस काव्यकृति के माध्यम से कवि यह स्थापित करते हैं कि मात्र सुखों की प्राप्ति ही जीवन नहीं है। 'आत्मजयी' का नचिकेता दैहिक, दैनिक स्तर पर जीवन जीने से इंकार करता है। नचिकेता की जिज्ञासा, नचिकेता के सवाल वस्तुवादी दृष्टि के प्रतिकार हैं।

- ‘अपने सामने’ (1979)- ‘आत्मजयी’ के प्रकाशन के एक दशक से भी ज़्यादा समय बाद उनकी यह कृति प्रकाशित हुई। ‘अपने सामने’ की कविताएँ कुँवर नारायण के युगबोध का पता देती हैं। इस संग्रह की कविताएँ कवि के सामाजिक सरोकारों से हमारा परिचय कराती हैं। व्यवस्था का दंश झेल रहे मनुष्य के करुण स्वर को इन कविताओं में महसूसा जा सकता है। कवि की चिंता का केंद्र मनुष्य है इसलिए तत्कालीन मनुष्य जिस भय एवं असुरक्षा को महसूस कर रहा था उसकी अभिव्यक्ति इस संग्रह की कविताओं में हम पाते हैं।

- ‘कोई दूसरा नहीं’ (1993) :इस संग्रह की कविताओं में वैविध्य है। इतिहास, पर्यावरण तथा मानव-जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करती ये कविताएँ कुँवर जी की पहले की कविताओं से अधिक परिपक्व एवं संभावनाशील नज़र आती हैं। ‘कोई दूसरा नहीं’ की कई कविताएँ भाषा और कविता के संदर्भ को लेकर लिखी गयी हैं। मनुष्य के जीवन के लिए कविता क्या मायने रखती हैं? और कविता की अनुपस्थिति से मानवीय जीवन किन संभावनाओं को खो देता है? इन सवालों को ढूँढने की कोशिश कुँवर जी कई कविताओं में करते नज़र आते हैं।

- ‘इन दिनों’ (2002)- इस काव्य-संग्रह में तत्कालीन समय तथा उस समय से जूझते इंसान का प्रतिबिंब है। ‘एक अजीब-सी मुश्किल’, ‘बाजारों की तरफ़ भी’, ‘आजकल कबीरदास’, ‘अगर इन्सान ही हूँ’ तथा ‘अमीर खुसरो’ जैसी कविताएँ इस संग्रह को विशिष्ट बनाती हैं। ऐतिहासिक चरित्रों को केंद्र में रखकर लिखी गयी कविताओं में इतिहास को नवीन दृष्टि से देखने की कोशिश है। कुँवर जी अपनी कई कविताओं में यांत्रिकता तथा बाज़ार के असली चरित्र को उजागर करते हैं तथा इस हिंसा और नफ़रत के दौर में प्रेम की महत्ता को सिद्ध करते हैं।

- 'वाजश्रवा के बहाने' (2008) : इसे 'आत्मजयी' का अगला पड़ाव माना जा सकता है। 'आत्मजयी' के प्रकाशन के लगभग पाँच दशक बाद यह खंडकाव्य प्रकाशित हुआ। जिस जिजीविषा को कुँवर जी की कविता की केन्द्रीय विशिष्टता माना जाता है उसका उत्कर्ष है यह खंडकाव्य। बकौल कवि "'आत्मजयी' में यदि मृत्यु की ओर से जीवन को देखा गया है, तो 'वाजश्रवा के बहाने' में जीवन की ओर से मृत्यु को देखने की एक कोशिश है।"[14] नचिकेता की यम लोक से वापसी पर नचिकेता और वाजश्रवा का संवाद केवल दो पीढ़ियों का संवाद नहीं है, बल्कि वह दो जीवन-दृष्टियों का संवाद है।

- 'हाशिए का गवाह' (2009) : काव्य-विविधता के दृष्टिकोण से यह कुँवर नारायण का एक महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह है।इस संग्रह की कई कविताओं में इतिहास को कवि की दृष्टि से वर्णित होता हुआ हम पाते हैं। 'नीरो का संगीत-प्रेम', 'ट्यूनीशिया का कुआँ', 'इतना कुछ था दुनिया में' 'तुलसीदास रत्नावली प्रसंग' आदि इस संग्रह की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं। इस संग्रह की अंतिम कविता है 'उत्तरदायित्व'। यह कविता कवि की स्वीकारोक्ति है कि उनके लिखे में उनका अंतर्विरोध और उनका अन्तःकरण मौज़ूद है। कवि अपने सृजन का उत्तरदायित्व स्वयं पर लेते हुए स्वीकार करते हैं कि उनकी तरह उनकी दुनिया भी मानवीय है।

- कुमारजीव (2015) : कुँवर नारायण की चेतना ज्ञान और संस्कृति के आदान-प्रदान के विषय में जिस तरह से सोचती है ; 'कुमारजीव' उस मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन की अनेक समस्याओं और विडम्बनाओं के बीच भी कुमारजीव ने अपने मूल्य और नैतिकता से समझौता नहीं किया।कुमारजीव जिन प्रश्नों को उठाता है वह इस काव्यकृति को वर्तमान संदर्भों में प्रासंगिक बनाता है।

- सब इतना असमाप्त (2018) : यह काव्यकृति कुँवर नारायण के मरणोपरांत प्रकाशित हुई। 'सब इतना असमाप्त' की कविताएँ घनीभूत चिंतन से उपजी कविताएँ हैं।जिस प्रबुद्ध

उदासी की झलक हमें पूरे संग्रह में देखने को मिलती है वह वर्तमान समय के बुरे हालात को दिखाता है। आज का मनुष्य प्रकृति के साथ जो दुर्व्यवहार कर रहा है वह कवि की चिंता के केंद्र में है। युद्ध की मानसिकता को नकारते हुए भी कुँवर जी ने इस संग्रह में कविताएँ लिखी हैं।

कहानी संग्रह-

- आकारों के आसपास (1971) : इस संग्रह में कुल सत्रह कहानियाँ संग्रहित हैं। इन कहानियों से गुज़रता हुआ पाठक यह महसूस कर सकता है कि भले ही यहाँ कथा तत्व गौण हो परन्तु जीवन की निर्मिति का प्रयास प्रबल है। 'आकारों के आसपास', 'गुड़ियों का खेल', 'आशंका', 'कमीज़', मुआवजा आदि इस संग्रह की प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।
- बेचैन पत्तों का कोरस (2018) : यह संग्रह कुँवर जी के मृत्युपरांत प्रकाशित हुआ। इसके संपादक अमरेंद्रनाथ त्रिपाठी हैं। इस संग्रह में कुल बीस कहानियाँ संग्रहित हैं।सभी कहानियाँ एक दूसरे से भिन्न और रोचक ढंग से रची गयी हैं। जीवन की संश्लिष्टता और बहुस्तरीयता को इन कहानियों से गुज़रता हुआ पाठक महसूस कर सकता है।

➢ **समीक्षा एवं विचार आधारित पुस्तकें:**

- आज और आज से पहले (1998) : यह कुँवर जी की आलोचनात्मक कृति है जिसमें उन्होंने अपने समय और समाज को तथा अपने समकालीन साहित्य-लेखन को न सिर्फ़ मूल्यांकित करने का प्रयत्न किया है बल्कि हिंदी आलोचना के लिया नया मार्ग प्रशस्त किया है। कुँवर नारायण की वैचारिक चेतना अपने समय और साहित्य पर पैनी निग़ाह रखती है।

- साहित्य के कुछ अन्तरविषयक संदर्भ (2003) : इस पुस्तक के माध्यम से कुँवर नारायण के महत्वपूर्ण व्याख्यानों से परिचित हुआ जा सकता है। इसमें कुल तीन व्याख्यान संकलित हैं-'साहित्य और नई आर्थिक समालोचना', 'साहित्य इतिहास और संस्कृति' तथा 'साहित्य और नैतिकता'।

- दिशाओं का खुला आकाश (2012) : यह डायरी कुँवर नारायण की बौद्धिक आत्मकथा कही जा सकता है। इसके संपादक यतीन्द्र मिश्र हैं। इस डायरी में कला, साहित्य, भाषा, जीवन, संगीत, लखनऊ की यादें आदि से संबंधित कई मूल्यवान टिप्पणियाँ हैं।

- शब्द और देशकाल (2013) : यह निबंधों का संकलन है।कला, जीवन, साहित्य, भाषा, शब्द-चिंतन आदि से संबंधित कई निबंध इसमें संकलित हैं। 'भाषा की पारिस्थितिकी', 'युद्ध और कविता', 'कलाओं के अंतर्संबंध', 'साहित्यिक स्वायत्ता', 'भावनाओं को सोचते हुए' आदि इस संग्रह के प्रमुख निबंध हैं।

- लेखक का सिनेमा (2013) : यह पुस्तक इस बात का प्रमाण है किकुँवर जी विश्व-सिनेमा को गहराई से समझते हैं।इस पुस्तक के दो खंड हैं। पहले खंड के अधिकांश लेख भारत में दिखाये जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्मोत्सवों पर केन्द्रित हैं। दूसरे खंड में साहित्य और सिनेमा के संबंधों पर विचार तथा प्रेमचंद और सत्यजित राय पर लेख और संस्मरण हैं।इस पुस्तक के संपादक गीत चतुर्वेदी हैं।

- रुख़ (2014) : यह समीक्षा, संस्मरण एवं टिप्पणियों का संग्रह है।इसके संपादक अनुराग वत्स हैं।अपने समकालीनों को जिस आत्मीयता से कुँवर जी याद करते हैं वह उनके आपसी संबंधों का पता देता है। समकालीन रचनाकारों की समीक्षा के क्रम में कुँवर नारायण ने जगह-जगह पर अपनी असहमति भी दर्ज की है और प्रशंसा भी की है। इस असहमति और प्रशंसा के क्रम में वे न तो दुराग्रह के शिकार हुए, न ही पक्षधरता के।

कुँवर नारायण के व्यक्तित्व के अवलोकन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि कवि का व्यक्तित्व बहुआयामी है। कुँवर नारायण मूलतः अपने कवि रूप की वजह से जाने जाते हैं परन्तु इनकी आलोचनाएँ और कहानियाँ न सिर्फ़ उत्कृष्ट हैं बल्कि हिंदी आलोचना और हिंदी कहानी के लिए नये मार्ग प्रशस्त करती हैं। कुँवर जी के व्यक्तित्व-निर्माण में उनकी संगति, अध्ययन और यात्राओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इनके व्यक्तित्व में किसी भी तरह की कट्टरता का कोई स्थान नहीं है। स्वतंत्र चिंतन को कुँवर जी ने अपने जीवन के हर क्षेत्र में महत्त्व दिया है।

संदर्भ सूची:

1. The New Encyclopedia Britannica, Macropedia, Vol.14, P.108

2. कुँवर नारायण, सब इतना असमाप्त, पृष्ठ-6

3. कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-125-126

4. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-169

5. वही, पृष्ठ-169

6. वही, पृष्ठ-169

7. वही, पृष्ठ-87-88

8. (सं) अनुराग वत्स, रुख़, पृष्ठ-79

9. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-16

10.(सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-63

11.वही, पृष्ठ-63

12.वही, पृष्ठ-65

13.वही, पृष्ठ-87

14.कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-7

1.2 एक प्रश्नाकुल कवि का वैचारिक धरातल

कुँवर नारायण को चिंतक मिजाज़ का कवि कहा जाता है। एक ऐसा कवि जो अपनी काव्य-यात्रा की उड़ान तय करते समय कोरी भावुकता के पंखों के सहारे नहीं रहता, बल्कि बौद्धिकता और संवेदनशीलता के सन्निवेश को अपने काव्य-लेखन का आधार बनाता है। कुँवर नारायण एक प्रश्नाकुल कवि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं, उन सवालों के साथ जो मानव जीवन, मानवीय जीवन की सार्थकता, व्यापकता, चुनौतियों एवं संभावनाओं से गहरे अर्थों में सम्बद्ध है।इस प्रश्नाकुल कवि की काव्य-यात्रा को समझने के लिए यह लाज़िम है कि उनके उस वैचारिक धरातल की पड़ताल की जाए जिसपर खड़े होकर कवि ने लगभग आधी शताब्दी तक निरपेक्ष भाव से कविता, काव्य-भाषा, प्रेम, नैतिकता, जीवन-मृत्यु, आत्मान्वेषण जैसे विषयों पर सार्थक विमर्श को जन्म दिया।एक रचनाकार की सार्थकता का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वह अपनी कृति द्वारा जनमानस को किसी विषय पर चिंतन के लिए किस हद तक उद्वेलित करता है। 'परिवेश:हम-तुम' की भूमिका में जब कुँवर नारायण यह लिखते हैं कि "कवि मूलतः विचारक नहीं आवश्यकतः विचारक भी है। उसका काम हमें बौद्धिक बनाना नहीं, बुद्धिमत्ता के प्रति संवेदनशील बनाना है।हमारी समझ के उपकरणों को पैना रखना है ताकि हम वास्तविकता को बुद्धि, मन और प्रज्ञा के विभिन्न स्तरों पर साथ-साथ ग्रहण कर सकें: कोई एक क्षमता दूसरों को दबा कर बर्बर या दूसरों से दबकर दुर्बल न हो जाए। मेरी दृष्टि में आज की कविता का यह पक्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।"[1] तो कहीं न कहीं उनकी वैचारिकी की भी हमें झलक मिल रही होती है। कुँवर नारायण की कविता महज़ आवेग या उत्तेजना में लिखी गयी कविता न होकर उस विचार-सम्पन्नता से युक्त है जिसका आधार हमें उपनिषदों, गीता, कबीर, ग़ालिब आदि में मिलता है।

किसी भी व्यक्ति की वैचारिकता पर उसकी संगति, रुचि, अवसर एवं अध्ययन आदि का ख़ासा प्रभाव पड़ता है। कुँवर नारायण का उदाहरण भी इससे अछूता नहीं है। उनके व्यक्तित्व में

जो उदात्तता है, उसमें पुस्तकों एवं लखनऊ के तत्कालीन साहित्यिक जीवन का उतना ही योगदान है जितना पोलैंड, रूस और चीन की यात्रा; नेरुदा, नाज़िम हिकमत, और एंटन स्लोनिस्मकी से मुलाकात एवं आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी तथा डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे विचारकों के साथ का है। कुँवर नारायण ने कई जगहों पर (विभिन्न साक्षात्कारों एवं भेंटवार्ताओं में) स्वयं इस बात को स्वीकारा है कि पुस्तकों से लेकर विभिन्न विद्वतजनों तक जो भी उनके संपर्क में आये सभी से उन्हें कुछ न कुछ सीखने को मिला। उदाहरण के लिए नरेन्द्र देव के सान्निध्य में उन्हें मार्क्सवाद और बौद्ध धर्म के उन उदात्त मूल्यों को जानने का अवसर मिला, जो बाद के वर्षों में उनकी वैचारिक चेतना के निर्माण में सहायक हुई। सन् 1980ई. के आस-पास के लखनऊ का ज़िक्र करते हुए वे अपनी डायरी में लिखते हैं कि "आचार्य नरेन्द्र देव जी ने, जिनका हमारे घर पर आना-जाना था, मुझे सबसे पहले 'वर्ल्डस एण्ड' सीरीज़ के उपन्यास पढ़ने को कहा था, जो मुझे उस समय बहुत पसन्द आये थे।...मुझे लगता है पढ़ने-लिखने की दुनिया की ओर उनके निकट सम्पर्क ने मुझे अधिक उत्साहित किया।"[2] कालांतर में 'कुमारजीव' जैसी उत्कृष्ट रचना अगर कुँवर नारायण अपने पाठकों को दे सके तो इसके पीछे कहीं न कहीं जीवन के प्रारंभिक दिनों में मिला नरेन्द्र देव का वह साथ उत्तरदायी है, जिसने कुँवर जी को बौद्ध धर्म को और गहराई से जानने के लिए प्रेरित किया। लखनऊ के तत्कालीन साहित्यिक वातावरण और इन विद्वतजनों के संगत ने कुँवर नारायण की चेतना में साहित्य का बीज बोया। अरूंधती सुब्रमण्यम को दिये साक्षात्कार में कुँवर जी कहते हैं कि "लखनऊ का तत्कालीन साहित्यिक जीवन काफी समृद्ध था- कॉफी हाउस में नियमित विचार-विमर्श और लेखक मित्रों के साथ लेखक संघ की साप्ताहिक गोष्ठियाँ हुआ करतीं। इस दौरान मुझे अनेक अग्रज साहित्यकारों, शिक्षाविदों और राजनीतिज्ञों से मिलने का अवसर मिला। आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी तथा डॉ. राममनोहर लोहिया- जो मेरे पारिवारिक सदस्य के समान थे-का मेरे विचारों की निर्मिति में पर्याप्त योगदान रहा। उन्होंने मुझे मेरे परिवार की व्यापारिक पृष्ठभूमि से बाहर निकालकर

साहित्य की दिशा में प्रेरित किया। इन सभी अनुभवों को मैं अपनी साहित्यिक निर्मिति में अत्यन्त महत्वपूर्ण मानता हूँ।"[3]

जिजीविषा एवं सार्थक जीवन जीने के प्रयास को अपने काव्य-दर्शन एवं जीवन-दर्शन का केंद्र मानने वाले कवि कुँवर नारायण की कविताओं, भेंट-वार्ताओं, आलेखों, कहानियों आदि में हम उनके विचारों को सूत्रबद्ध होते पाते हैं। ध्यातव्य है कि लगभग पचास सालों के अपने लेखन में कुँवर नारायण कभी भी एक विचारधारा के अनुयायी बनकर नहीं रहे। विचार की प्रधानता को स्वीकार करते हुए भी कभी बौद्धिक रूखाई के शिकार नहीं हुए। अपनी कविता के विषय में कुँवर जी लिखते हैं- "विचार पक्ष की प्रधानता को, मैं आशा करता हूँ, एकदम बौद्धिक रुखाई से जोड़ लेने की जल्दी न की जायेगी। कविता मेरे लिए कोई भावुकता की हाय-हाय न हो कर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है।"[4] और इस मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए भाषा मात्र एक माध्यम नहीं है बल्कि वह अनिवार्य हिस्सा है जिसे सावधानी से बरते जाने की आवश्यकता कुँवर जी महसूस करते हैं। कुँवर नारायण की वैचारिक प्रणाली में भाषा इतनी अहमियत इसलिए रखती है क्योंकि वे शब्द की शक्ति को पहचानते हैं। वह इस बात से भलीभाँति अवगत हैं कि यदि कोई रचनाकार विशेषकर कवि (क्योंकि कविता में कम शब्दों में बहुआयामी अर्थ को व्यंजित करना होता है) शब्द को बोलने की आज़ादी दे तो वह क्या असर पैदा कर सकता है। स्वयं कवि के शब्दों में "शब्द बड़े बातूनी होते हैं, लेकिन हम उनको बोलने नहीं देते। हम उनसे अपनी बातें कहलवाते रहते हैं। कभी-कभी शान्त होकर उन्हें सुनना चाहिए। कई बार बड़ी बातें सामने आती हैं। कितनी ही अच्छी कविता इससे बन पड़ती है।"[5] कुँवर नारायण 'चक्रव्यूह'(1956) से लेकर 'वाजश्रवा के बहाने'(2008) तक भाषा का जिस हद तक सतर्क प्रयोग करते दिखते हैं उसके पीछे उत्तरदायी निश्चय ही वह वैचारिकता रही होगी जो उपर्युक्त पँक्तियों में उद्घाटित हुई है। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण के सम्पूर्ण काव्य लेखन के केंद्र में जीवन है और जीवन कभी भी वैचारिकता से निरपेक्ष नहीं हो सकती। इसी वैचारिकता की

वजह से कुँवर नारायण की कविता में दार्शनिकता का पुट नज़र आता है। जहाँ एक ओर सार्थक जीवन जीने के लिए वैचारिकता का होना आवश्यक है, वहीं संवेदना एवं अनुभूति भी अनिवार्य है। कुँवर नारायण चूँकि कविता को जीवन सापेक्ष मानते हैं इसीलिए उनके काव्य लेखन में 'चक्रव्यूह'(1956) से लेकर 'वाजश्रवा के बहाने'(2008) तक अनुभूति और वैचारिकता के सम्मिलन को देखा जा सकता है। इस विषय में कुँवर नारायण का मत दृष्टव्य है- "कविता में विचार की अलग कोई जगह नहीं होती- ऐसा होगा तो वह या तो कविता नहीं होगी या विचार नहीं होगा, कविता दोनों का बेमेल घोल होकर रह जाएगी। अच्छा विचार भी अच्छी कविता तभी हो सकेगा, जब दोनों एक-दूसरे में ठीक से घुले मिले हों, अन्यथा वे एक दूसरे को ख़ारिज कर देंगे। कविता का पहला काम किसी भी बड़े विचार या सच्चाई का विवरण या सूचना मात्र नहीं, उसकी आत्मिक अनुभूति करा सकना है।"[6] निश्चय ही कुँवर नारायण की कविताओं में वैचारिकता और दर्शन के जितने उच्च सोपान हमें नज़र आते हैं, उनकी कविताओं में आत्मिक अनुभूति का आधार भी उतना ही मज़बूत है। वैचारिकता और आत्मीयता का यह संयोग अन्यत्र दुर्लभ है। आत्मीय होना या करुणाशील होना जहाँ मानव होने की पहली शर्त है वहीं एक मनुष्य का वैचारिक होना उसके आधुनिक होने का प्रमाण है। जब व्यक्ति आधुनिकता को सच्चे अर्थों में ग्रहण करता है तो वह मिथकों से भी उन शाश्वत मूल्यों को ढूँढ निकालता है जिसके सहारे अपने समय और जीवन की परिस्थितियों को कुछ बेहतर बना सके। यही कारण है कि आत्मजयी जैसा प्रबंध-काव्य जिसका आधार कठोपनिषद का नचिकेता प्रसंग है, को लिखते समय कुँवर नारायण की सचेत काव्य-दृष्टि अपने युग और काल की समस्याओं पर भी थी। मिथक उनके लिए एक सहारा है जिनके माध्यम से कवि बेहतर ढंग से अपनी बात सामान्य जन को समझा सकता है क्योंकि उन्हें इस बात का भान है कि "पौराणिक अतीत केवल हमारी स्मृति का हिस्सा नहीं है, वह बहुत कुछ आज भी हमारी मानसिकता में प्रतीक रूप में जीवित और सक्रिय है।"[7] कुँवर नारायण को इस बात का एहसास था कि मिथक हमारे जन-जीवन को अच्छे और बुरे दोनों

रूपों में प्रभावित कर सकता है। उन्होंने राजनीतिज्ञों के द्वारा 'राम' के मिथक का दुरुपयोग भी देखा था और इसी से क्षुब्ध होकर 'अयोध्या-92' कविता भी लिखी थी।

कुँवर नारायण जैसे विचारशील व्यक्तित्व को यह मालूम था कि कविता, मानवीय जीवन में क्या अहमियत रखती है। उन्हें इस बात का भी भान है कि भौतिक आवश्यकताओं से परे भी मानवीय आवश्यकता है। उपभोक्तावाद के इस युग में जब मनुष्य वस्तु में, और मनुष्य की भावनाएं यंत्र में तब्दील हो रही हैं, ऐसे समय में आंतरिक उन्नति पर बल देने वाली विचार पद्धति ही मानवीय अस्तित्व के संवर्द्धन का रास्ता सुझा सकती है। कुँवर नारायण की सम्पूर्ण काव्य-साधना इसी आंतरिक उन्नत्ति पर बल देती है। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में विज्ञान के बेज़ा इस्तेमाल को भी देखा था और पोलैंड में मृत्यु की त्रासदी को भी देखा था जहाँ पूरा का पूरा वार्सा युद्ध में समाप्त हो चुका था। वह मानव-मानव के बीच बढ़ रही दूरियों से भलीभांति अवगत थे। ऐसे त्रासदी पूर्ण समय में भी उन्हें इस बात का पूरा भरोसा था कि कविता मनुष्य के लिए वह जरूरी मानसिक ख़ुराक़ है जो मानव-मानव के बीच बढ़ रही दूरी को कम कर सकती है। उनकी कविताओं से गुजरते हुए हमें यह एहसास होता है कि उनका सारा प्रयास स्वस्थ-जीवन मूल्यों के प्रति मनुष्य को सचेत बनाने तथा हमारी जीवन-दृष्टि को उदार बनाने पर केन्द्रित रहा। कभी नचिकेता तो कभी वाजश्रवा के बहाने जिस आत्मान्वेषण को हम कुँवर नारायण के काव्य में अभिव्यक्त होते पाते हैं उनकी नज़रों में वह साहित्य की मूल चेतना है। बकौल नारायण जी "मुझे वह साहित्य पसंद है जो इस मानसिक विस्तार का परिचायक हो (और नमूना भी) कि प्रगति का अर्थ केवल भौतिक या तकनीकी प्रगति नहीं बुद्ध के आत्मान्वेषण की ओर भी हो सकती है।"[8]अब जहाँ बुद्ध का आत्मान्वेषण होगा वहां हिंसा तो होगी नहीं! कुँवर नारायण के सम्पूर्ण काव्य-वस्तु का आधार इस हिंसा का प्रतिगामी अहिंसा और प्रेम रहा है। वे हिंसा के परिणामों से भी अवगत थे और अहिंसा एवं प्रेम की ताक़त से भी। आत्मजयी के नचिकेता का जीवन-दर्शन कई मायनों में कुँवर नारायण के जीवन दर्शन की प्रतिबद्धता और वैचारिकता का आईना है।

हिंसात्मक मनोवृत्ति पर नचिकेता के शब्दबाण कवि की वैचारिक दृढ़ता भी है और प्रतिबद्धता भी। उदहारण के निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन्

जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है।

नहीं चाहिए वह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो।

मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ।

अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक।

अपने अकेलेपन में अधिक मुक्त।

अपनी उदासी में अधिक उदार।"[9]

कई मायनों में कुँवर नारायण की काव्य-साधना प्रेम की सिद्धि का अनुष्ठान प्रतीत होती है। जीवन को सार्थक बनाने के लिए प्रेम की अनिवार्यता का ज़िक्र उनकी कई कविताओं में देखा जा सकता है। कुँवर नारायण की वैचारिकता और जीवनदृष्टि के अभिन्न अंग के रूप में 'प्रेम' को लक्षित किया जा सकता है। उनके लिए प्रेम एक 'भाव' मात्र नहीं है। वह मानव होने कि पहली और अनिवार्य शर्त है। वह मानव का स्थायी गुण है जिससे चाहकर भी विरत नहीं हुआ जा सकता। जिसके अभाव में मानव, मानव रह ही नहीं जाता। इस प्रेम की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति- उनकी बहुचर्चित कविता 'एक अजीब सी मुश्किल' में होते पाते हैं। कुँवर नारायण को साहित्य-चिंतन की परिधि की व्यापकता मालूम थी, उन्हें यह भी मालूम था कि मानव और मानव-जीवन की सभी समस्याएँ भौतिक नहीं हैं। अगर समस्याएँ भौतिक नहीं हैं तो उसका निवारण भी भौतिक वस्तुओं को प्राप्त करने मात्र से नहीं हो सकता। कुँवर नारायण की नज़रों में इसी भौतिकता से परे की चाहत को साहित्य पूरा करता है।वह साहित्य के प्रभाव से भी परिचित हैं और दायित्व से भी।

उन्हें इस बात का मर्म है कि किसी कविता की सार्थकता जीवन से वाबस्तगी का एहसास कराने में है। जीवन के विविध चित्र मिलकर इनकी कविताओं में एक कोलाज का निर्माण करते हैं। इनके काव्य-संग्रहों से गुजरने के दौरान जीवन को देखने और समझने की सार्थक दृष्टि से हमारा साक्षात्कार होता है। कई अर्थों में कुँवर नारायण की कविता जीवन-संघर्षों का अथक अनुष्ठान है। कुँवर जी जीवन और भाषा के संबंधों को समझने वाले रचनाकार हैं। वे कविता की भाषा में ज़िन्दगी पर विचार करते हैं और मानव जीवन के लिए कुछ मूल्यवान खोजना चाहते हैं। भाषा और शब्द के विषय में उनके विचार दृष्टव्य हैं- "भाषा और जीवन-वस्तु दोनों को लेकर मैं इस ओर बराबर सचेत रहा हूँ कि कविताओं में बड़े-से-बड़े जीवनानुभव का आभास हो। हम जिसे आज की, या रोज़मर्रा की, या बोलचाल, बाज़ार और काम धन्धों की भाषा कहते हैं-वह भी इकहरी नहीं होती। हर शब्द का केवल एक निश्चित अर्थ ही नहीं होता, उसका एक इतिहास, संस्कृति और स्मृतियाँ भी होती हैं। भाषा में वे दबी-छिपी-सी रहती हैं, लेकिन कविता में उन्हें इस प्रकार भी ध्वनित किया जा सकता है कि वे बोल उठें। यह मौजूदा यथार्थ के लुप्त आयामों के उद्घाटन की कोशिश है। कविता भाषा के इस पार्श्व अभिप्रायों से भी अर्थ संप्रेषित करती है और भाषा के केवल तात्कालिक ही नहीं, उसके परोक्ष संदर्भों को भी झंकृत करती है। भाषा केवल विचार-विनिमय का साधन-मात्र नहीं है, वह खुद भी सोचती है और उसके इस सोचने को भी कविता में महसूस कराया जा सकता है।"[10] इस वैचारिकता का असर हम कुँवर जी की कविताओं में भी देखते हैं। इनकी कविताओं में अगर कोई शब्द आता है तो उसके केवल तात्कालिक अर्थ नहीं होते बल्कि वह एक व्यापक जीवन-अनुभव को अपने पूरे संदर्भों में उद्घाटित करता है।

इसी तरह कुँवर नारायण जब इतिहास की किसी घटना पर विचार करते हैं तो उसे केवल उस घटना के संदर्भ में न देखकर, उससे प्राप्त अनुभव को ज्यादा महत्त्व देते हैं। उदाहरण के रूप में उनके खंडकाव्य 'कुमारजीव' को देखा जा सकता है। कुमारजीव ऐतिहासिक चरित्र है, परन्तु जब

कुँवर जी उसको आधार बनाकर काव्यकृति की रचना करते हैं तो घटनाओं से अधिक जीवन की उन सच्चाइयों पर बल देते हैं जो हमारे समय के लिए महत्वपूर्ण है। कुँवर जी की कविताओं के विषय में रेखा सेठी लिखती हैं- "वे इतिहास के पृष्ठों से ऐसे पात्र व स्थितियाँ चुनते हैं, जिन्होंने समय के विभिन्न पड़ावों पर राजनीति और सत्ता के वर्चस्व को चुनौती दी है ताकि मनुष्यता जीवित रह सके।"[11]सत्ता और राजनीति के वर्चस्व को चुनौती देने का उनका अंदाज़ भी औरों से जुदा है। एक साहित्यकार के रूप में वे आक्रमक प्रतिरोध के बजाय उदात्त और शाश्वत जीवन-मूल्यों को बचाना ज़्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। एक साहित्यकार के रूप में लड़कर वीरगति पाने से ज़्यादा महत्वपूर्ण वे यह मानते हैं कि उन मूल्यों को बचाया जाए जो जीवन के लिए श्रेष्ठ हों। अपनी इसी जीवन-दृष्टि के कारण वे प्रायः इतिहास के लेखन और पाठ के पारंपरिक तरीके से संतुष्ट नहीं हो पाते हैं। अपनी डायरी 'दिशाओं का खुला आकाश' में वे लिखते हैं- "काल विभाजन इस तरह नहीं करें कि एक राजा मरा तो दूसरा गद्दी पर आया। यानी एक का शासन-काल समाप्त हुआ, दूसरे का शुरू हुआ-साहित्य और कलाओं में ऐसा नहीं होता। बड़ी कला, बड़ा साहित्य कभी नहीं मरते। वे विस्तृत होते हैं। उनके प्रभाव घटते-बढ़ते रहते हैं, और वे आसानी से एक काल से दूसरे में, एक देश से दूसरे में, एक भाषा से दूसरे में-आ जा सकने में सक्षम होते हैं।"[12]कुँवर जी की यह दृष्टि उनकी कई कविताओं में भी देखने को मिलती है। यहाँ उनकी कृति 'कुमारजीव' को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। अगर हम इतिहास की दृष्टि से कुमारजीव के समय-काल की बात करें तो उनका समय 344 से 413 ई. है। अगर उनके कार्य-क्षेत्र की बात की जाए तो उनका कार्य-क्षेत्र प्रमुख रूप से कूछा, कश्मीर, क़ाश्गर ल्यांगचओ और छांग-आन रहा है। परन्तु जब कुँवर नारायण कुमारजीव के जीवन को आधार बनाकर कविता लिखते हैं तो उनका उद्देश्य घटनाओं से अधिक जीवन की उन सच्चाइयों को स्थापित करना है जो समयातीत एवं कालातीत हैं। इन सच्चाइयों के स्वीकार से मानव-जीवन समृद्ध होता है। बाज़ार के प्रभाव में आकर कई बार हम जीवन की मूल्यवान सच्चाइयों को

अनदेखा करते हैं। उदाहरण के लिए आज भौतिक विकास को तो सभी महत्त्व देते हैं परन्तु आत्मिक विकास को हम लगातार नज़रअंदाज करते हैं। कुँवर नारायण आत्मिक विकास के महत्त्व को कुमारजीव के माध्यम से पुनःस्थापित करते हुए लिखते हैं-

"वह-जो आत्मिक है, वह तो

सदियों में उत्पन्न होता है,

एक कुमारजीव शरीर से नहीं

आत्मानुसन्धान से प्राप्त होता है

और उसी में जीता है सदैव:"[13]

'आत्म' को ढूँढने की प्रक्रिया में कुँवर जी जिस प्रकार शामिल होते हैं वह उन्हें अपने समकालीन एवं परवर्ती रचनाकारों से विशिष्ट बनाता है। ध्यान रहे कि उनके आत्म का यह संधान नयी कविता के व्यक्तिवाद से भिन्न है। कुँवर जी सह-अनुभूति को आत्मानुभूति का विस्तृत रूप मानते हैं तथा मनुष्य की मानसिकता के विकास के लिए आत्मिक अनुभूति को महत्वपूर्ण मानते हैं। मानवीय अस्तित्व की सार्थकता को तलाशते हुए कुँवर जी कई अंतर्द्वंद्वों से गुजरते हैं। किसी निष्कर्ष पर पहुँचने की भयानक जल्दबाजी से वे परहेज करते हैं। जीवन के जिन अनुभवों को हम साधारण समझकर महत्त्व नहीं देते हैं, उन जीवन-अनुभवों को अपनी कविताओं में कुँवर जी युगव्यापी सत्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। कवि का चिंतनशील मानस अपने युग संदर्भों से जुड़े सवालों को कभी उपनिषद को आधार बनाकर उठाता है, कभी पुराण को आधार बनाकर। कुल मिलाकर तत्कालीन किसी समस्या पर विचार करते हुए वे केवल तत्काल तक सीमित नहीं रहते हैं बल्कि इतिहास की भी यात्रा करते हैं। इस संदर्भ में रेखा सेठी का मत दृष्टव्य है- "कुँवर नारायण समय को तात्कालिकता में नहीं देखते बल्कि उसका एक बड़ा वृत्त रचते हैं। इसमें इतिहास-

स्मृति, परंपरा, संस्कृति के घटक तो समाहित रहते ही हैं, भविष्य का मानचित्र भी उभरता है।"[14]ग़ौरतलब है कि भारतीय चिंतन में 'आत्म' या 'स्व' पर बहुत विचार-विमर्श किया गया है। और, कुँवर नारायण की कविताओं में भी 'स्व' के सहारे मनुष्य के मन या आत्मा के अंतर्द्वंद्वों को समझने की कोशिश की गयी है। कुँवर नारायण भीतर से बाहर की यात्रा करते हैं। इनकी कविताओं में समाज और संसार की व्याख्या व्यक्ति के मन की व्याख्या से प्रारंभ होती है। कुँवर जी की कविताएँ मन के भीतरी तहों को स्पर्श करती हैं। ध्यातव्य है कि कई बार व्यक्ति पूरी की पूरी ज़िन्दगी गुज़ार देता है परन्तु अपने मन के भीतरी परत तक नहीं पहुँच पाता जबकि इन तहों में जाना उस यात्रालोक का अनुभव देता है जो जीवन को ज्यादा प्रमाणिक, सच्चा और विस्तृत बनाता है। इस भीतरी परत को छूने की वजह से ये कविताएँ मनुष्य के विषय में नये सिरे से खोज करती हैं। मनुष्य की भीतरी परत के विषय में खोज की यह प्रवृत्ति कुँवर नारायण के काव्य-चिंतन को फ्रायड, युंग और लेविस्त्रोस जैसे चिंतकों से जोड़ती है। कुँवर जी की कविताएँ बहुअर्थी हैं और मन के एक से अधिक परतों को छूकर मनुष्य की मानसिकता और संवेदनाओं में बुनियादी परिवर्त्तन लाने की कोशिश करती हैं। जहाँ भी ये कविताएँ इन कोशिशों में कामयाब रही हैं वहाँ ये मनुष्य-मनुष्य के बीच के संबंधों को मजबूत करती हुई देखी जा सकती हैं। बाहर और भीतर की यह चिंतन-यात्रा मनुष्य के स्वभाव में बुनियादी परिवर्त्तन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हो सकती है।

कुँवर नारायण की कविताओं में जो उदात्त भाव नज़र आता है वह उनकी वैचारिक चेतना का ही प्रतिफलन है। उनका मानना था कि ज्ञान के क्षेत्र में पूरब और पश्चिम, उत्तर और दक्षिण का भेद नहीं होना चाहिए। जहाँ भी कुछ श्रेष्ठ है उसकी सराहना होनी चाहिए। अपनी प्रारंभिक कविताओं पर फ्रेंच प्रतीकवादियों के असर को कुँवर जी बिना किसी संकोच के स्वीकार करते हैं-"मेरी शुरू की कविताओं पर फ्रेंच प्रतीकवादियों का खासा असर था। आज भी समझता हूँ कि

प्रतीकवादी कवि जैसे भी थे, कविता को लेकर उनके सिद्धान्त बहुत प्रेरणादायक थे। कविता को लेकर उन्होंने जो चिन्तन किया, उसका दूर तक असर पड़ा-कविता की आधुनिकता पर।"[15]

जिस तरह ज्ञान के क्षेत्र में कुँवर जी पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण केभेद को नकारते हैं ठीक उसी तरह से धार्मिक या भाषाई भेद को भी नकारते हैं। ग़ालिब के लिखे पत्रों को कुँवर जी न सिर्फ़ पसंद करते हैं बल्कि ग़ालिब द्वारा लिखे पत्रों में शब्दों के इस्तेमाल में जो किफ़ायत और कसावट है उसके कुँवर जी मुरीद रहे हैं।वे ग़ालिब के पत्रों को उत्कृष्ट गद्य की एक ऐसी धरोहर मानते हैं जिनकी ओर हमें बार-बार लौटना चाहिए। कुँवर जी जब साहित्य के बारे में विचार करते हैं, कलाओं के बारे में विचार करते हैं तो सम्पूर्णता में करते हैं। वे साहित्य और कला का मूल्यांकन करते समय उसके ऐतिहासिक संदर्भों को कभी भी बिसराते नहीं हैं और न ही किसी पूर्वाग्रह के शिकार होते हैं। उस्ताद रहीमुद्दीन खां से हुई मुलाक़ात का ज़िक्र करते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं- "खां साहब ने वेद की कुछ ऋचाएँ सुनाईं : सुनकर दंग रह गया। ऐसा शुद्ध संस्कृत का उच्चारण किसी महापंडित से भी नहीं सुना था !...देर तक सोचता रहा-कहाँ गया वह हिन्दू मुसलमान का भेद?"[16] कुँवर जी आगे बताते हैं कि रहीमुद्दीन खां के संस्कृत उच्चारण पर उस परंपरा का असर दिखा जो उनके परिवार में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही थी, संगीत के साथ संस्कृत के शुद्ध उच्चारण की परंपरा। ग़ौरतलब है कि कुँवर जी को जितना किसी व्यक्ति का भाषा-बोध प्रभावित करता है, उतनी ही संगीत या अन्य कलाएँ। कुँवर जी का मानस अन्य कलाओं को साहित्य से बिल्कुल पृथक करके नहीं देखता। वे संगीत, साहित्य और अन्य कलाओं को सूत्रबद्ध करके देखते हैं और इस सत्य को मुक्त कंठ से स्वीकारते हैं कि "संगीत में, तथा दूसरी कलाओं में भी, रुचि ने मेरी साहित्यिक संस्कृति को कई स्तरों पर समृद्ध किया है।"[17]

जब हम अपने समय को देखते हैं तो यह सिर्फ़ साहित्य के लिए मुश्किल दौर नहीं है अन्य कलाओं और सांस्कृतिक चेष्टाओं के लिए भी यह एक मुश्किल समय है।हमें यह समझना होगा कि सिर्फ़ फ़िल्म और फ़िल्मी गीत ही कलाएँ नहीं होती हैं। आज की फिल्मों का झुकाव भी

कलात्मकता की अपेक्षा स्थूल व्यावसायिकता की तरफ अधिक है। यह कितना दुखद है कि साहित्य एवं कलाएँ राज्य के लिए लगभग अप्रासंगिक होती जा रही हैं। किसी राजनेता का साहित्य एवं कलाओं से सरोकार होना इस समय की ज़रुरत में शामिल नहीं है। इससे भी ज़्यादा दुखद यह है कि साहित्य एवं कलाओं के लिए राजनीति प्रासंगिक बनती जा रही है। साहित्यिक गतिविधियों पर राजनीतिक नियंत्रण साहित्य एवं कलाओं के विकास के लिए शुभ संकेत नहीं हैं। कुँवर जी जैसे सचेत कला-प्रेमी साहित्यकार को यह हस्तक्षेप चिंतित करता है-"रोज़-ब-रोज़ राजनीति और राज्य के बढ़ते हुए असर ने हमारी सभी साहित्यगत, कलागत और संस्कृतिगत चेष्टाओं को धीरे-धीरे अपने अंतर्गत कर लिया।"[18]

अगर साहित्य और कलाएँ भी राजनीतिक पार्टियों के 'नैरेटिव' को आगे बढ़ाने का माध्यम बन जाएँ, अगर वह भी बाज़ार और सत्ता के गठजोड़ को चुनौती न दे तो भला कौन देगा? एक कवि के लिए सत्ता द्वारा मिलने वाली प्रशंसाएं और पुरस्कारों से अधिक उस प्रतिबद्धता का महत्त्व है जिससे मनुष्य के जीवन की बुनियाद है। इस प्रतिबद्धता का कोई विकल्प नहीं है और न होना चाहिए। कुँवर नारायण अपने साक्षात्कारों में इस बात को बार-बार दोहराते हैं कि कवि और लेखक से किसी भी हाल में उसकी आज़ादी को नहीं छीना जाना चाहिए। ज़रूरी नहीं है कि कवि हर बार सत्ता कि नीतियों का समर्थक हो, जब वह आपका विरोध करे तब भी उसे सुना जाना चाहिए। सचेत कवि और कलाकार का विरोध भी सृजन का बीज बोता है। बकौल कुँवर नारायण-"मैं यह दलील यहाँ नहीं रख रहा हूँ कि लेखक को सुविधापरक समाज मिले। उलटे मेरी दलील यह है कि उसे राज्य के विरोध में रहकर भी लिख सकने की आज़ादी हो। राज्य की नीतियों से साठ-गांठ वाली स्थिति में नहीं, भंडा-फोड़ वाली स्थिति में भी, उसकी सम्भावना बरकरार रहे।"[19]

उपभोक्तावादी संस्कृति और यंत्रीकरण के बढ़ते प्रभाव की वजह से आज बाज़ार हमारे सोचने-समझने की क्षमता को नियंत्रित कर रहा है। और, यह वस्तु तक ही सीमित नहीं है इसके

दायरे में साहित्य एवं कलाएं भी आ रही हैं, उससे भी कुँवर जी चिंतित हैं। अगर साहित्य स्वयं को बाज़ार के मानकों पर खरा उतारने लग जाए, ख़ासकर ऐसे वक्त में जब बाज़ार स्थूल व्यावसायिक जीवन-दृष्टि से संचालित हो रहा है, तो यह साहित्य के भविष्य के लिए बहुत शुभ संकेत नहीं हैं। हमें यह समझना होगा कि श्रेष्ठ कलाओं का उद्देश्य क्षणिक लाभ नहीं होता। हमें यह भी समझना होगा कि बहुधा 'बेस्ट-सेलर' ही सर्वश्रेष्ठ नहीं हुआ करते। कुँवर नारायण अपनी डायरी में लिखते हैं-"बाज़ार-संस्कृति की जिस अंतर्राष्ट्रीय चकाचौंध में हम खड़े क्या उसके पार भी हम कुछ देख पा रहे हैं? ऐसा लगता है की ज़्यादा दबाव बेस्ट-सेलर (सर्वाधिक बिकाऊ माल) के उत्पादन पर है, न कि बेस्ट (सर्वश्रेष्ठ) की खोज पर।...ऐसा भी नहीं कि इस समय बड़ा साहित्य नहीं लिखा जा रहा है, पर यह सवाल फिर भी अपनी जगह बना रहता है कि आज जीवन में उत्कृष्ट की खोज इतनी उपेक्षित और निर्वासित-सी क्यों है?"[20]कुँवर जी ने कभी नहीं चाहा कि उपभोक्तावादी विश्वदृष्टि हमारी जीवन-दृष्टि को निर्मित करे। इस निर्मिति केदुष्परिणामों से वे अवगत थे। कुँवर जी की व्यक्ति प्रधान कविताओं में भी 'व्यक्ति' प्रधान नहीं होता, उसकी मानसिकता प्रधान होती है। याद रहे कि व्यक्ति स्थानिक हो सकता है पर मानसिकता वैश्विक हुआ करती हैं। यही कारण है कि कुँवर जी की कविताएँ विश्वजनीन कविताएँ हैं।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि एक कवि के रूप में कुँवर नारायण का वैचारिक धरातल इतना सशक्त है कि वे ताउम्र वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनी कविता में बरतते रहे। चाहे 'नचिकेता' हो या 'कुमारजीव' हर रूप में हमें कवि की वैचारिक चेतना सजग दिखती है। कुँवर नारायण विचारों के जंग में विश्वास करने वाले कवि नहीं हैं, विचारों के संवाद में उनकी आस्था है। वे चाहते हैं कि दो परस्पर विरोधी विचार भी एक दूसरे से संवाद करें, एक दूसरे की कमियों की आलोचना करें और एक दूसरे की श्रेष्ठता को सराहें। कुँवर जी विचारों का महत्त्व समझते हैं, परन्तु किसी विचारधारा से नहीं जुड़ते हैं। उनकी दृष्टि में विचार की कोई सीमा नहीं होती और विचारधारा व्यक्ति को सीमा में बाँध देती है। इसलिए वादों के संकीर्ण घेरे में रखकर

किसी कवि को देखना कुँवर जी को अखरता है। उनका स्पष्ट मत रहा है- "बड़ा लेखन खेमों का मोहताज नहीं होता, न उनकी सीमाओं में अट ही नहीं पाता है। खेमे बड़े साहित्य के पीछे भागते हैं अपनी विश्वसनीयता का आधार खोजते हुए।"[21]

कुँवर जी की वैचारिक चेतना के निर्माण में विद्वानों की संगति, विदेश यात्राओं और विश्व के महान कवियों से हुई मुलाक़ात, विस्तृत अध्ययन आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सबके प्रभाव को कुँवर जी ग्रहण करते हैं परन्तु ज्यों का त्यों नहीं। तर्क की कसौटी पर वे लगातार हर विचार को परखते हैं, और मनुष्यता के लिए जो कुछ भी उन्हें श्रेष्ठ नज़र आता है, उन्हें वे आत्मसात करते चलते हैं। कुँवर नारायण कविता के माध्यम से श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण विचारों को जीवन के निकट लाना चाहते हैं। उनके लिए मनुष्य के जीवन पर विचार करने का माध्यम है कविता और, इस जीवन से जुड़े सरोकारों पर भी विचार का नाम है कविता। बकौल कुँवर नारायण-"विचारहीन कविताएँ मस्तिष्क रहित शरीर की तरह होती हैं। एक सुन्दर शरीर अगर दिमाग़ की ओर से कुन्द, तो ज्यादा काम का नहीं। कविता सर्वांग सुन्दर न भी हो, तो भी यदि अक्ल, मन मस्तिष्क और वैचारिक सुन्दरता से संपन्न है, तो मात्र शारीरिक सुन्दरता से अधिक ग्राह्य है।"[22]

संदर्भ सूची:

1. कुँवर नारायण, परिवेश:हम-तुम, पृष्ठ-7
2. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-170
3. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-87
4. (सं) अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-155
5. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-83
6. वही, पृष्ठ-30
7. वही, पृष्ठ-29
8. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार : कुँवर नारायण, पृष्ठ-33
9. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24
10. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-86
11. (सं) रेखा सेठी, मैं कहीं और भी होता हूँ, पृष्ठ-19
12. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-69
13. कुँवर नारायण, कुमारजीव पृष्ठ-154-155
14. (सं) रेखा सेठी, मैं कहीं और भी होता हूँ, पृष्ठ-23
15. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-170
16. वही, पृष्ठ-177
17. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार : कुँवर नारायण, पृष्ठ-26
18. (सं) यतीन्द्र मिश्र, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-102
19. वही, पृष्ठ-102
20. वही, पृष्ठ-52-53
21. (सं) विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-41
22. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-119

1.3 कुँवर नारायण की कविताओं में चिंतन एवं अनुभूति का स्वर

कविता के विषय में यह आम धारणा है कि उसका संबंध हृदय के भाव पक्ष से है परन्तु कुँवर नारायण की कविता हमें यह बताती है कि कविता सिर्फ़ भावों की अभिव्यक्ति नहीं है। वे विचारशीलता को काव्य में स्थान देने के हिमायती हैं। उनका स्पष्ट मत है कि "विचारशीलता आधुनिक संवेदना का अनिवार्य हिस्सा है और एक ज़रूरी यकीन भी है कि अगर अक्ल आदमी की दुश्मन नहीं तो अक्ल कविता की भी दुश्मन नहीं हो सकती।"[1]हालाँकि कुँवर जी वैचारिकता को कविता के लिए आवश्यक मानते हैं पर उनकी कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि अगर वे कोरी भावुकता के कवि नहीं हैं तो कोरी दार्शनिकता के कवि भी नहीं हैं। उन्होंने चिंतन और अनुभूति को गलाकर एक दूसरे में मिला दिया है। इस मिश्रण का प्रतिफलन ही कुँवर नारायण की कविता है। कुँवर नारायण की कविताओं में गुंजायमान चिंतन एवं अनुभूति के स्वर को उनकी काव्य-कृतियों के माध्यम से समझा जा सकता है। इस उपअध्याय में कुँवर नारायण की काव्यकृतियों को केंद्र में रखकर उनमें मौजूद चिंतन एवं अनुभूति के स्वर को ढूँढने की कोशिश की गयी है।

➢ 'चक्रव्यूह'(1956):

लगभग सत्तर कविताओं का यह संग्रह 1956 में प्रकाशित हुआ। यह कुँवर नारायण का पहला काव्य-संग्रह है। अपने पहले कविता संग्रह में ही कुँवर नारायण एक परिपक्व कवि के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। उनकी यह उपस्थिति इस लिहाज़ से भी ख़ास है क्योंकि वे एक ओर जहाँ कविता को कोरी भावुकता की हाय-हाय से दूर ले जाने का यत्न करते दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर इनकी कविता कहीं बौद्धिकता के बोझ तले दबती भी नहीं प्रतीत होती। वैचारिकता के शिखर पर भी इनकी कविता अपनी सहजता नहीं खोती है। 'चक्रव्यूह' में संग्रहित कविताएँ आज भी हमारे हृदय के अंतस्तल को छूती हैं। चक्रव्यूह कई जगहों पर अपने वैश्विक

संदर्भ को उद्घाटित करता है, बावजूद उसके वह प्रत्येक व्यक्ति का उतना ही वैयक्तिक संदर्भ भी है क्योंकि चक्रव्यूह के बहाने कवि राज-व्यवस्था के जिस चरित्र को उद्घाटित करते हैं उससे वर्तमान समाज और इस समाज में रहने वाला व्यक्ति प्रभावित है। 'चक्रव्यूह' में मनोजगत की कई जटिलताओं से भी कवि-मन संघर्ष कर रहा है। 'चक्रव्यूह' के कवि के विषय में जगदीश गुप्त ने ठीक ही लिखा है- "'चक्रव्यूह' का कवि जीवन की घनीभूत भावनात्मक जटिलता के बीच उसकी विषमताओं का स्वयं अनुभव करते हुए एक सुस्थिर गंभीर जीवन-दृष्टि पाने के लिए ईमानदारी के साथ यत्नशील है।"[2]

चक्रव्यूह में उस यात्रा को हम देख सकते हैं जो व्यक्ति के अंतर्मन की यात्रा है। यात्रा भी ऐसी जो अपनी ज़िन्दगी का ही आशय तलाश रही है। कवि मानव जीवन को सार्थक रूप में देखना चाहते हैं, यह आशय की तलाश जीवन को सार्थक रूप देने का एक प्रयास है। 'आशय' शीर्षक से ही इस संग्रह में एक कविता भी संगृहीत है। इस एक कविता के द्वारा कवि के चिंतन और अनुभूति की गहराई का अंदाजा लगाया जा सकता है-

"अमाशय,

यौनाशय,

गर्भाशय,...

जिसकी ज़िन्दगी का यही आशय,

xxxxxxxxxxxxxxxxxxx

हाय,पर मेरे कलपते प्राण,

तुमको मिला कैसी चेतना का विषम जीवन मान?

जिसकी इन्द्रियों से परे

जाग्रत हैं अनेकों भूख!"[3]

मनुष्य को इन्द्रियों के सुख से परे ले जाने की यह अकुलाहट कुँवर जी के उद्देश्यों का पता देती है।कई कविताओं में अनोखी लाक्षणिकता के भी दर्शन होते हैं। कुँवर नारायण उपर्युक्त कविता में 'अमाशय', 'यौनाशय' और 'गर्भाशय' तीन शब्दों का प्रयोग केवल तुकबंदी के लिए नहीं करते हैं बल्कि वे इन शब्दों के मार्फ़त ज़िन्दगी का आशय ढूंढ रहे हैं। वास्तव में, कुँवर जी की समूची काव्य-यात्रा ज़िन्दगी के आशयों की तलाश ही है। कालांतर में 'आत्मजयी' जैसी कृति में हम इस पँक्ति का विस्तार पाते हैं। जब नचिकेता दैहिक जीवन से ऊपर उठकर जीने की कोशिश करता है तो वह कई मायनों में इन्द्रियों से परे जाने की कोशिश ही है। 'चक्रव्यूह' में जीवन की सतही वास्तविकताओं से मोहभंग की स्थिति है। कवि, जीवन की गहराइयों में उतरकर उस सत्य की तलाश करते हैं जिसपर अक्सर हमारा ध्यान नहीं जाता है। 'चक्रव्यूह' की भाषा के क्लिष्ट होने का आरोप जो लगता रहा है वह संभवतः इस गहराई में उतरने की वजह से भी है।'चक्रव्यूह' की पँक्तियाँ अंतर्मन की गहराइयों में प्रवेश करती हैं। इस संग्रह की इस विशेषता को लक्ष्य करके नेमिचन्द्र जैन लिखते हैं- "आत्मचेतना की प्रखरता ही इन कविताओं में है-ऐसी आत्मचेतना जो अंतर्मन के गुह्य-से-गुह्य पर्त को चीर जाने के लिए कटिबद्ध है।"[4] कुल मिलाकर चक्रव्यूह जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला काव्य है।

➢ परिवेश : हम-तुम(1961):

'परिवेश : हम-तुम' कुँवर नारायण का दूसरा काव्य-संग्रह है। उनके पहले काव्य-संग्रह 'चक्रव्यूह' से यह कई मायनों में भिन्न है। इस काव्य-संग्रह में जीवन के वे प्रसंग मुखर हैं जिनके तार प्रेम से जुड़ते हैं, संवेदनाओं से जुड़ते हैं। यहाँ अंतर्द्वंद्व का वैसा गूढ़ आत्ममंथन नहीं जैसा 'चक्रव्यूह' में है। इस काव्य-संग्रह के विषय में देवीशंकर अवस्थी जी लिखते हैं- "इस संग्रह को पढ़ जाने का पहला प्रभाव मन पर यही पड़ता है कि 'चक्रव्यूह' की बेहद गंभीर तनावपूर्ण स्थिति

को कवि पार कर चुका है, 'भटके हुए सौन्दर्यबोध' का ज्वार उतर चुका है और कवि अधिक सहज रूप धर कर प्यार, प्रकृति और परिवेश को देख रहा है।"[5] 'चक्रव्यूह' में जो कवि जटिल मनःस्थितियों के बीच जूझ रहा था, उसे हम 'परिवेश : हम-तुम' में सहजता के प्रति आकर्षित होते हुए पाते हैं। इस संग्रह की कविताएँ सहज ज़रूर हैं पर सतही नहीं हैं। यह काव्य-कृति तीन खंडों में विभाजित है। पहले खंड का शीर्षक है- 'प्यार के सौजन्य से' दूसरे खंड का शीर्षक है- 'उजले रंग' और तीसरे खंड का शीर्षक है- 'एक स्थापना'। तीनों खंडों की कविताओं के विषय-वस्तु एक दूसरे से भिन्न है। पहले खंड की कई कविताओं में हम प्रेम के उदात्त रूप को अभिव्यक्त होते पाते हैं। कवि को यह अहसास है कि प्रेम केवल देह का मिलन कदापि नहीं हो सकता-

"तुम्हें पाने की अदम्य आकांक्षा

देह की बन्दी है।

तुम्हें देह तक लाने की इच्छा तो

शव-सी गन्दी है।"[6]

'परिवेश: हम तुम' का कवि हमारे अंदर के प्रेमी को बार-बार चुनौती देता है क्योंकि वह नहीं चाहता कि हमारा प्रेम कलंकित हो। इस संग्रह का कवि किसी झूठे आकर्षण के मोह-पाश में नहीं बँधना चाहता है। उसका यह निश्चय इतना दृढ़ है कि वह प्रेम से मोहभंग तक की स्थिति में पहुँच जाता है लेकिन प्रेम को देह तक सीमित नहीं रखता है-

"यह प्यार नहीं, अपने को जूठा करना है,

यह तृप्ति ज़हर है, यह दयनीय पराजय।

सह लूँगा अपनी भूख किन्तु यह भीख नहीं,

मुझको वंचित ही रहने दो, छोड़ो अभिनय।"[7]

इस काव्य-संग्रह के दूसरे खंड की कविताएँ प्रकृति से संबंधित हैं। प्रकृति हिंदी कविता में विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती रही है परन्तु कुँवर जी की ये कविताएँ प्रकृति के पारंपरिक वर्णन से भिन्न हैं। यहाँ जिन उपमानों को प्रस्तुत किया गया है वे स्वयं में अनूठे हैं। इन उपमानों से जो बिंब निर्मित हुआ है वह सर्वथा नया है। इन कविताओं में मनुष्य के भीतर की प्रकृति बाह्य प्रकृति से अपने संबंधों को तलाशती है और जीवन को अर्थ देती है। तीसरे खंड की कविताओं में हमें कुँवर जी का युगबोध देखने को मिलता है। वर्तमान समय की तमाम विसंगतियों के बावजूद कवि मनुष्य के भविष्य के प्रति आस्थावान हैं। कुँवर जी की लेखनी जिस नैतिक साहस का प्रतिनिधित्व करती है उसको अभिव्यक्त करती एक कविता 'एक स्थापना' शीर्षक से इस खंड में संग्रहित है। बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति के तमाम लोभ को अस्वीकार करते हुए कवि लिखते हैं-

"जब मैं नहीं

मेरी ओर से कोई स्थापित करेगा मेरे वर्षों बाद

कि आज भी कहीं जीवन था-

क्योंकि केवल पहियों और पंखों वाली इस बे-सिर-पैर की सभ्यता में

दफ़्तरों, दुकानों और कारखानों से

अस्वीकृत होकर भी

मैंने जीना पसन्द किया!"[8]

कवि यहाँ हर उस व्यक्ति का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो जीवन को दुनियावी नज़रिये से देखने के बजाय फ़र्क़ तरह से जीने का रास्ता चुनता है। कवि को मालूम है कि वे हमेशा इस धरती पर नहीं रह सकते मगर उनकी लेखनी इस बात को बार-बार सिद्ध करती रहेगी कि मुश्किल परिस्थितियों में भी कवि ने जीना पसंद किया था। यह जिजीविषा मानव-भविष्य के लिए हमें आश्वस्त करती है।

- **आत्मजयी(1965):**

'आत्मजयी' का नचिकेता कठोपनिषद् का पात्र बाद में, कवि की सजग मानवीय चेतना का प्रहरी और आधुनिक चिंतन प्रणाली का प्रतिनिधि हस्ताक्षर पहले है। वाजश्रवा जहाँ जड़ हो चुके मूल्यों का संवाहक है वहीं नचिकेता नित नवीन मूल्यों का सृजन कर रहा है। यम से नचिकेता के साक्षात्कार में मृत्यु को वरण करते हुए भी जीवन की सार्थकता की तलाश है। "आत्मजयी" की भूमिका का प्रारंभ ही कुँवर जी इन पँक्तियों के साथ करते हैं कि "'आत्मजयी' में उठायी गयी समस्या मुख्यतः एक विचारशील व्यक्ति की समस्या है।...उसके अन्दर वह बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए केवल सुखी जीना काफ़ी नहीं, सार्थक जीना ज़रूरी है।"[9] सार्थक जीने की यह बहस मानवीय जीवन की संभावनाओं से जुड़ती है इसलिए 'आत्मजयी' कई अर्थों में मानव में निहित संभावनाओं को तलाशने वाला काव्य भी है। नचिकेता की चिंता, जिस अमर जीवन की चिंता है वह उन मूल्यों की भी अमरता है जो मानव को मानव के रूप में प्रतिस्थापित करता है। नचिकेता चिंतित है क्योंकि वह प्रत्येक परंपरागत मूल्य के प्रति आस्थावान नहीं हो सकता। नचिकेता सच्चे अर्थों में आधुनिक चरित्र है। आधुनिक होने की पहली शर्त वैचारिकता है, तर्कवान होना है। यह कुँवर नारायण की काव्य-कला ही कही जाएगी कि वह कठोपनिषद् की कथा को आधुनिक संदर्भ प्रदान कर पाने में सक्षम हुए हैं। उपभोक्तावादी और धार्मिक-पाखंडीमूल्यों को नचिकेता के प्रश्न चुनौती देते हैं। वर्तमान समय में बाज़ारवाद की गिरफ़्त में आकर जिस प्रकार से मनुष्य यांत्रिक होता जा रहा है, उसने अपनी चेतना को बाज़ार का गुलाम बना दिया है। वह अपने

हित से आगे सोच पाने में अक्षम है। ऐसे में नचिकेता की बौद्धिक चेतना मनुष्य को यांत्रिक बनाने वाली शक्तियों से मुठभेड़ करती नज़र आती है। वह अपने पिता की उपयोगितावादी मनोवृत्तियों का प्रत्युत्तर देना जानता है-

"पिता, तुम भविष्य के अधिकारी नहीं,

क्योंकि तुम 'अपने' हित के आगे नहीं सोच पा रहे,

न अपने 'हित' को ही अपने सुख के आगे।"[10]

यह साहस इसलिए भी विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि वर्तमान समय में अधिकांश लोगों की मनोवृत्तियाँ वाजश्रवा वाली ही हैं। ऐसे में नचिकेता का व्यक्तित्व वर्तमान मनुष्य की सामूहिक चेतना का परिष्कार करने वाला व्यक्तित्व है। ध्यातव्य है कि कठोपनिषद का परिवेश पौराणिक है लेकिन 'आत्मजयी' का परिवेश समसामयिक है।आज के हिंसक युग में नचिकेता की वैचारिकता कई मायनों में ख़ास है। नचिकेता के द्वारा कुँवर नारायण यह बताना चाहते हैं कि सार्थक जीवन के लिए वस्तुजगत ही पर्याप्त नहीं है। कितनी अजीब विडंबना है कि एक तरफ सत्ता की चाहत और स्वार्थ है, वो भी इतनी घनीभूत जो व्यक्तिगत हित से आगे सोच ही नहीं सकता तो दूसरी तरफ नचिकेता की चेतना है जो राजसत्ता को लगभग तिरस्कार के स्वर में चुनौती देती है कि- "अभी नहीं मुकुट और अलंकार/अभी नहीं तिलक और राज्यभार।"[11]यह चुनौती इसलिए भी दी गई है, क्योंकि वाजश्रवा जैसे सत्ता-लोलुप चरित्र के दान का उद्देश्य त्याग नहीं हुआ करता अपितु वह तो स्वार्थ के उस जंजाल में जकड़ा हुआ है जहाँ निर्मम हत्याओं के शर्त पर भी स्वार्थ-सिद्धि क़ुबूल है। नचिकेता की वैचारिकता एक सबक है वाजश्रवा जैसी मनोवृत्तियों के लिए।

'आत्मजयी' में अपने कथ्य की व्यंजना के लिए कुँवर जी अगर 'मिथक' का सहारा लेते हैं तो उसका भी कारण है। कुँवर जी इस बात से परिचित हैं कि मिथक प्राचीन किस्सा मात्र न

होकर एक ऐसा प्रतीक है जो हमारी चेतना में दिलचस्प रूप में आज भी विद्यमान है। और, इन प्रतीकों का कुँवर जी अपने अनुसार उपयोग करते हैं। ध्यातव्य है कि ऐसी हालत में ये प्रतीक अपनी प्राचीन अर्थ तक सीमित नहीं रहते, बल्कि नये अर्थों के साथ आधुनिक संदर्भों से जुड़ जाते हैं। 'आत्मजयी' को भी सिर्फ मिथक आधारित काव्य के खांचे में समेटना संभव नहीं। कुँवर जी के शब्दों में "'आत्मजयी' इस अर्थ में मृत्यु की निराशा के विरुद्ध एक मिथक भी है, और मनोवैज्ञानिक मोर्चा भी।"[12]यह मनोवैज्ञानिक मोर्चा इसलिए भी है क्योंकि नचिकेता का मृत्यु से साक्षात्कार, उसमें निराशा के भाव को जन्म नहीं देता बल्कि उसके व्यक्तित्व को विराट बनाता है, उसे आत्म को खोजने के लिए प्रेरित करता है और उसके आत्मिक उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करता है। इस आत्मिक विकास का संबंध इन्द्रियों से नहीं है, बल्कि जीवन के सृजनात्मक पक्ष से है। इसलिए कई मायनों में आत्मजयी जीवन के संभावनाओं को दैहिक-दैनिक स्तर से ऊपर उठकर तलाशने की कोशिश है। अपनी डायरी 'दिशाओं का खुला आकाश' में 'आत्मजयी' की इस विशेषता को लक्ष्य करते हुए कुँवर जी लिखते हैं-

"'आत्मजयी' में मृत्यु के भय से उबर सकने और रचनात्मक जीवन की शक्ति को पहचान सकने की चिंता प्रमुख रही है।"[13]

- **अपने सामने (1979):**

'अपने सामने' की कविताएँ किसी एक समय में नहीं लिखी गयी हैं इसलिए इसमें अनुभूति और चिंतन का वैविध्य है। ये कविताएँ कथ्य और रूप में एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी ज़िन्दगी से गहरे अर्थों में जुड़ी हुई हैं। इस संग्रह की कविताएँ ज़िन्दगी को थोड़ा और नज़दीक से, थोड़ा और विस्तार से, थोड़ी और गहराई से देखने का प्रयास मालूम होती हैं। इस संग्रह की पहली कविता है- 'अन्तिम ऊँचाई'। यह कविता कई मायनों में ज़िन्दगी का निचोड़ है। जब कवि लिखते हैं कि "मैंने अक्सर इस ऊलजलूल दुनिया को/ दस सिरों से सोचने और बीस हाथों से पाने की

कोशिश में/ अपने लिए बेहद मुश्किल बना लिया है"[14] तो पाठक एक पल को ठहर जाता है। इस ठहराव के एक पल में उसे ज़िन्दगी की वो तमाम अँधी प्रतिस्पर्द्धाएँ, जिसमें वह रोज़ भाग लेता है, बेमानी लगने लगती हैं। अचानक मस्तिष्क के पटल पर सवाल कौंधता है- क्या हम इस दुनिया को और जीवन को रोज़ कठिन बनाते जा रहे हैं? ऐसा क्यों है कि जब हम एक लड़ाई जीतते हैं तो उसी क्षण दूसरे की तैयारी कर रहे होते हैं। और, इस भागदौड़ में ज़िन्दगी को युद्ध के मैदान में तब्दील कर देते हैं!

कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा मालूम होता है कि कवि-कर्म एक कला मात्र नहीं है यह एक नैतिक ज़िम्मेदारी भी है, मनुष्य को मनुष्य की तरह पढ़ने की ज़िम्मेदारी। कभी आपने सोचा है, क्या वजह है कि प्रकृति की सुंदरतम कृति कहा जाने वाला मनुष्य दिनों-दिन खूँखार होता जा रहा है? जीवन, जो संभावनाओं से ओत-प्रोत है, वह क्यों जटिल होता जा रहा है? क्यों आज सभी बर्बर ताकतें मनुष्यता को हराने के लिए एकजुट होता जा रही हैं? 'अपने सामने' का कवि ऐसे कई प्रश्नों से घिरा है। ध्यातव्य है कि तमाम निराशाओं के बीच भी आदमी की सत्ता में उसका विश्वास कम नहीं हुआ है। वह मनुष्य को स्वयं के प्रति सच्चा होते हुए देखना चाहता है, वह मनुष्य को आत्म का बोध कराना चाहता है। मानव-मानव के बीच गलाकाट प्रतिद्वंदिता को ख़त्म करना चाहता है-

"मुझे एक मनुष्य की तरह पढ़ो, देखो और समझो

ताकि हमारे बीच एक सहज और खुला रिश्ता बन सके

माँद और जोखिम का रिश्ता नहीं"[15]

सवाल उठता है क्या यह दुनिया कवि के इस आग्रह को स्वीकार करेगी? समय की क्रूरता को देखते हुए फिलहाल तो यह संभव नहीं लगता। इस कविता-संग्रह के रचनाकाल(1979) में भी यह संभव नहीं हुआ, अब तो स्थितियाँ और भी विकराल रूप ले चूँकि हैं। यहाँ कवि अकेला

है। ठीक वैसे ही जैसे हर संवेदनशील और वैचारिक प्राणी हुआ करता है। परन्तु कवि संसार के भय से इतना भी भयभीत नहीं है कि दुनिया के मन-माफ़िक आचरण करने लग जाए। वह जीने के अद्भुत तरीके बार-बार ईज़ाद करता है-

"अपराधी की तरह पकड़ा जाता रहा बार-बार

अद्भुत कुछ जीने की चोर कोशिश में।"[16]

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि 'अद्भुत कुछ जीने' की कोशिश करने वाला व्यक्ति दुनिया की निग़ाह में अपराधी है। दुनिया में बहुतायत लोगों की जीवन-दृष्टि ऐसी हो गई है जिससे कवि को बगैर अपराध किये अपराधी क़रार दिये जाने का डर है। यही डर 'आज भी' शीर्षक कविता में और सघनता से अभिव्यक्त हुआ है। कवि को गैलीलियो याद आते हैं और साथ में याद आते हैं वे 'उतावले लोग' जिन्हें आस्था के प्रति कोई सन्देह बर्दाश्त नहीं होता। कवि जानता है कि गैलीलियो की हत्या सिर्फ़ इतिहास नहीं है न वे लोग इतिहास मात्र हैं जो अपनी मान्यताओं के खिलाफ़ कुछ भी नहीं सुनना चाहते हैं, फिर चाहे वह सच ही क्यों न हो-

"झूठ या सच से नहीं

इस तरह यकीन रखने वालों के बहुमत से

डरता हूँ

आज भी!"[17]

यह डर यूँ ही नहीं है, सत्ता और व्यवस्था द्वारा बहुमत में शामिल इन लोगों को लगातार सच को झूठ कहने के लिए मानसिक ख़ुराक दी जा रही है। इसी सत्ता के विषय में एक जगह मुद्राराक्षस ने लिखा है कि "यह वह सत्ता है जो आदमी को आदमी बने रहने देना पसंद नहीं करती।"[18] आज के समय के परिप्रेक्ष्य में इस कविता को देखने पर पता चलता है कि कुँवर

नारायण न सिर्फ़ अपने समय को पहचानते थे बल्कि उनकी कविता कई मायनों में आज के सामाजिक यथार्थ को भी बयाँ करती है। मनुष्य का हथियार में बदलते जाना त्रासदीपूर्ण ज़रूर है परन्तु यह आज का यथार्थ है। कुँवर नारायण इस तब्दीलीकरण को रोकना चाहते हैं। चूँकि कवि को मानवीय जीवन की संभावनाओं का बोध है इसलिए वह मनुष्य को यंत्र या हथियार में तब्दील होता हुआ नहीं देखना चाहता है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि कुँवर नारायण की कविताओं में यथार्थ सामान्यीकृत रूप में अभिव्यक्त नहीं हुआ है। ये कविताएँ मानवीय अनुभव से उपजे यथार्थ और जीवन-दर्शन के मेल का प्रतिफलन हैं। इन कविताओं की रचना-प्रक्रिया में अनुभव की महत्वपूर्ण भूमिका होने की वजह से ये कविताएँ मानव का सहज-यथार्थ मालूम होती हैं। उदाहरण के लिए 'समुद्र और मछली' शीर्षक कविता में अनुभवजन्य यथार्थ और दर्शन के मेल को देखा जा सकता है- "बस वहीं से लौट आया हूँ हमेशा/ अपने को अधूरा छोड़कर/ जहाँ झूठ है, अन्याय है, कायरता है, मूर्खता है/ प्रत्येक वाक्य को बीच में ही तोड़-मरोड़कर/ प्रत्येक शब्द को अकेला छोड़कर/ वापस अपनी ही बेमुरौव्वत पीड़ा के/ एकांगी अनुशासन में/ किसी तरह पुनः आरम्भ होने के लिए।"[19] पुनः प्रारंभ होना कुँवर नारायण के लिए बहुत महत्त्व रखता है। उनकी कई अन्य कविताओं में भी इस लौटने या फिर से नयी शुरुआत का ज़िक्र है। याद कीजिए,'कोई दूसरा नहीं' की उन पँक्तियों को जिसमें कवि कहते हैं कि "अबकी अगर लौटा तो/ हताहत नहीं/ सबके हिताहित को सोचता/ पूर्णतर लौटूँगा"[20]'समुद्र और मछली' कविता में भी कवि उस दुनिया से लौटने की बात कर रहे हैं जहाँ झूठ, अन्याय, कायरता और मूर्खता है। अर्थात कवि उस दुनिया में लौटना चाह रहे हैं जहाँ सत्य, न्याय, साहस और बुद्धिमत्ता है।

इस संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है 'जब आदमी आदमी नहीं रह पाता'। मनुष्य बगैर मनुष्यत्व के कितना डरावना हो सकता है इसकी कल्पना करना भी मुश्किल है। इस कविता में कवि उस प्रक्रिया की बात करते हैं जो आदमी को आदमी नहीं रहने देता है। इस प्रक्रिया में हम

और आप सब शामिल हैं क्योंकि मुश्किल के वक्त में हमने किसी की चीख को अनसुना किया है। कवि लिखते हैं कि "शायद उसी मुश्किल वक्त में/ जब मैं एक डरे हुए जानवर की तरह/ उसे अकेला छोड़कर बच निकला था खतरे से सुरक्षा की ओर/ वह एक फँसे हुए जानवर की तरह खूँख्वार हो गया था।"[21] मुश्किल के वक्त में किसी इंसान का साथ न देकर अपनी सुविधा के लिए बच निकलना वर्तमान समय में मध्यवर्गीय व्यक्ति का चरित्र बनता जा रहा है। हम इतने आत्म-केन्द्रित हो गये हैं कि सामूहिकता के भाव को हमने भुला दिया है। अँधेरे में मदद की आस में चिल्ला-चिल्लाकर दम तोड़ते व्यक्ति से मुँह फेर लेना कायरता है और कायर समाज में इंसान खूँख्वार जानवर में तब्दील हो जाने के लिए अभिशप्त है। यह कविता हममे बेचैनियाँ बढ़ाती हैं, और हम आत्मचिंतन करने पर मजबूर होते हैं। ऐसा नहीं है कि इस कविता में कुछ भी अतिशयोक्ति है, बल्कि जो भी भयानक डरावना दिख रहा है वह हमारे आज का यथार्थ है। हमने अपनी दुनिया को एक डरावने रंगमंच में तब्दील कर दिया है, जहाँ मनुष्य का सबसे ज़्यादा शिकार मनुष्य कर रहे हैं और मनुष्य सबसे ज़्यादा भयभीत मनुष्य से ही है। 'अपने सामने' की कविताएँ हमारे समय की त्रासदी का बयान हैं। यही कारण है कि इन कविताओं का पाठक अपने अंदर एक बेचैनी अनुभव करता है। बौद्धिक ऊहापोह से गुज़रे बगैर इन कविताओं को आत्मसात करना संभव नहीं है। इन कविताओं को पढ़ते हुए जिस मानसिक द्वंद्व से हमारा साक्षात्कार होता है उसका संबध कोरी बौद्धिकता से न होकर हमारे हृदय और बुद्धि दोनों से है। 'अपने सामने' का कवि पाठक को किसी भी किस्म के यूटोपिया या रामराज्य का स्वप्न दिखाकर सच्चाई से दूर ले जाना नहीं चाहता है। वह यथार्थ के वीभत्स चित्र को बिना किसी आवरण के अपनी कविता में व्यक्त करता है। वह 'अन्तिम ऊँचाई' पर पहुँचने की निरर्थकता को भी जानता है और 'अन्त तक हिम्मत न हारने' की सार्थकता को भी। आज हम जिस प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में जी रहे हैं और रोज की छीना-झपटी में जिस तल्लीनता से शामिल हैं, कुँवर नारायण की कविता उस छीना-झपटी वाली प्रतिस्पर्द्धा से मोहभंग की कविता है-

"दुर्गम वनों और ऊँचे पर्वतों को जीतते हुए

जब तुम अन्तिम ऊँचाई को भी जीत लोगे-

जब तुम्हें लगेगा कि कोई अन्तर नहीं बचा अब

तुममें और उन पत्थरों की कठोरता में

जिन्हें तुमने जीता है-

जब तुम अपने मस्तक पर बर्फ़ का पहला तूफान झेलोगे

और काँपोगे नहीं-

तब तुम पाओगे कि कोई फ़र्क नहीं

सब कुछ जीत लेने में

और अन्त तक हिम्मत न हारने में।"[22]

संघर्ष के प्रति आश्वस्ति का यह भाव कवि के उदात्त जीवन-दर्शन का प्रमाण है।

'अपने सामने' की कई कविताएँ हमें इतिहास की गलियों में भी ले जाती हैं। इतिहास को देखने का कुँवर नारायण का नज़रिया परंपरागत नजरिये से भिन्न है। वे जब इतिहास में झाँकते हैं तो सांस्कृतिक अतीत में भी झाँक रहे होते हैं, विविध कलाओं की विकास-यात्रा को भी रेखांकित कर रहे होते हैं और सबसे अहम् बात वे हमारे अतीत में जाकर संवेदना के उन सूत्रों को तलाश रहे होते हैं जिन्हें अक्सर परम्परागत इतिहास की पुस्तकों में जगह नहीं मिल पाती है।परम्परागत इतिहास की पुस्तकों में युद्ध और मारकाट को कई बार वीरगाथाओं के रूप में दर्ज किया गया है। कुँवर नारायण युद्ध की विभीषिका को समझते हैं इसलिए शासकों की जीत उन्हें नहीं लुभाती है। कुँवर नारायण 'विजेता के जीतों की अन्तिम हद' को पहचानने वाले कवि हैं-

"'घर'-मैंने इस शब्द की व्याकुल गूँज को

अक्सर ऐसी जगहों पर सुना है

जो कभी किसी विजेता के जीतों की अन्तिम हद रही है।"[23]

कुँवर नारायण की इतिहास-संबंधी कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि उनकी दृष्टि में जीत या हार से ज़्यादा महत्वपूर्ण वे सरोकार हैं जिनका संबंध मनुष्य होने की बुनियादी शर्तों से जुड़ा है। इसलिए उनकी संवेदना उन लोगों के साथ रही है जो सताये गये हैं, जिनपर जुल्म हुआ है, मानव इतिहास के पन्नों पर जिनके रक्त के धब्बे हैं। कुँवर जी की एक कविता है- 'काले लोग' इसको पढ़ते हुए कवि की विश्वदृष्टि का अंदाजा लगाया जा सकता है। उनकी संवेदना उन लोगों के साथ है, जिन्होंने केवल रंग की वजह से कई वर्षों तक अत्याचार को सहा है-

"सुना है वे भी इन्सान हैं, मगर काले हैं,

जिन्हें कुछ गोरे जानवरों की तरह पाले हैं।

आदमी की किताब में इनकी भी

एक जात होती है-एक प्रकार होता है,

और इनकी असभ्यता से भी ज़्यादा ख़तरनाक सभ्यता में

इनका शिकार होता है।"[24]

किसी सभ्यता में इंसान का ख़तरनाक तरीके से शिकार होना उस सभ्यता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। ऐसी कई कविताएँ हैं इस संग्रह में भी और इस संग्रह से इतर भी जो कुँवर जी की विश्वदृष्टि के प्रमाण हैं। कुँवर जी सार्वभौमिक संवेदना के कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं को किसी एक काल या एक देश के परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा जा सकता है। कुँवर नारायण की

विश्वदृष्टि के विषय में विष्णु खरे का मत दृष्टव्य है- "कुँवर नारायण के यहाँ इतिहास सिर्फ़ भारत तक ही सीमित नहीं है या किसी युग विशेष तक-उनकी निगाह पूरी मानव सभ्यता के विकास को लेकर चलती है इसलिए उसमें एक विश्वदृष्टि है जो इतिहास से सरोकार रखने वाले अधिकांश भारतीय रचनाकारों में दिखाई नहीं देती है।"[25]

➢ कोई दूसरा नहीं(1993):

'कोई दूसरा नहीं' में संग्रहित कविताएँ कुँवर नारायण की कविताओं में निहित चिंतनएवं अनुभूति का श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इस काव्य-संग्रह के चिंतन का फ़लक इतना विस्तृत है कि वह हमें आश्चर्यचकित करता है। इस संग्रह की पहली ही कविता, 'उत्केन्द्रित' की पहली पँक्ति है "मैं ज़िन्दगी से भागना नहीं/ उससे जुड़ना चाहता हूँ।"[26], जीवन से यह जुड़ाव आदमी के आदमी की तरह ज़िंदा रहने के लिए आवश्यक है। जीवन से जुड़ने की यह चाह ही है जो कवि को यह साहस देता है की यंत्र में तब्दील होते मानव को वह मनुष्यता की ओर सरका सके। इसी में कविता की भी सिद्धि है और इसी में जीवन की भी सिद्धि है। मानव जीवन की सार्थकता और कविता की सार्थकता दोनों का रास्ता इसी मनुष्यता की ओर सरकने से होकर जाता है। और, इस संग्रह का मूल उद्देश्य इसी सार्थकता की तलाश है। कोई दूसरा नहीं की कविताओं के माध्यम से कवि मनुष्य में निहित संभावनाओं की तलाश करते नज़र आते हैं। मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने वाली संभावनाओं को तलाशना कवि का मुख्य ध्येय है। इस दृष्टि से इस संग्रह की कविता 'अबकी अगर लौटा तो' महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है। 'मनुष्यतर' लौटना इस कविता का मूल ध्येय है। किसी के वापस लौटने का इससे उदात्त तरीका भला क्या हो सकता है कि "अबकी अगर लौटा तो/ हताहत नहीं/ सबके हिताहित को सोचता/ पूर्णतर लौटूँगा"[27]ऐसे समय में जब हम 'स्व' से आगे सोचने तक की ज़हमत नहीं उठा पा रहे हैं, 'सबके हिताहित' की बात सोचना निश्चय ही पूर्णता का भाव है। वर्तमान में मनुष्य के जीवन से वे सभी गुण पलायन करते जा रहे हैं

जिनसे मानवीय व्यक्तित्व उदात्त बनता है। ऐसे में सबके हित की बात सोचना एक बौद्धिक निर्णय है यह सोच कवि के मानवीय सरोकारों का पता देती है।

इस संग्रह की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कविता है 'पालकी'। 'पालकी' कविता शोषण की उस कहानी का बयान है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। वे लोग जिसके पुश्त-दर-पुश्त श्रम करते आ रहे हैं और जिनकी मेहनत पर समाज का एक वर्ग पलता आ रहा है, कविता का पात्र 'लाला अशर्फी लाल' एक व्यक्ति मात्र नहीं है बल्कि वह शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। कविता की निम्न पँक्तियाँ मर्म को उद्घाटित करती हैं-

"यह क़र्ज़ पुश्तैनी अभी किश्तें हज़ारों साल की।

काँधे धरी यह पालकी है किस कन्हैया लाल की?

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

तब भेद जाकर यह खुला-हमसे किसी ने चाल की

काँधे धरी यह पालकी ला ला अशर्फी लाल की!"[28]

हम जिस दौर में जी रहे हैं वह एक नाज़ुक दौर है। नफ़रत से मोहब्बत करना इंसानी फितरत हो गयी है। 'कोई दूसरा नहीं' की कई कविताओं में कवि समकालीन मनुष्य की इस प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हैं। रोज हो रही हत्याएँ जिस समय का यथार्थ हो, अखबार के पन्नों में ह्त्या की ख़बरें जब दैनिक समाचार का रूप ले लें, ऐसे वक्त में कवि-हृदय का विचलित होना लाज़िमी है। दम तोड़ते बेगुनाह और सड़कों पर बहता इंसानी खून कुँवर जी को बेचैन करता है। उनकी इस बेचैनी को 'क्रौंच वध' जैसी कविताओं में महसूसा जा सकता है-

"हम एक नाज़ुक दौर से

गुज़र रहे देश की

दर्दनाक हालत हैं,

मौत की अदालत में

अपराधी की तरह खड़ी

ज़िन्दगी की वकालत हैं,

नफ़रतों से भरी दुनिया में

दम तोड़ती बेगुनाहों का बयान हैं,

जिसका खून अब नसों में नहीं

सड़कों पर बह रहा

वो अभागे इन्सान हैं।"[29]

अब सवाल उठता है कि अगर समय इतना बुरा है तो इस समय में इंसान की भूमिका क्या होनी चाहिए? वह क्या करे? कुँवर जी मनुष्य से यह अपेक्षा करते हैं कि वह परिस्थितियों के समक्ष घुटने न टेके बल्कि उसका मुकाबला करे। उन्हें यह भी पता है कि यह मुकाबला आसान नहीं होगा पर वे इसकी अहमियत को समझते हैं। 'कोई दूसरा नहीं' संग्रह में संग्रहित उनकी एक कविता है 'सम्मेदीन की लड़ाई' जिसमें गाँव के उस ख़ब्ती सम्मेदीन का ज़िक्र है जो अपने समय की विसंगतियों के खिलाफ़ अकेला युद्ध लड़ रहा है। वह जिस उजाले को बचाये रखने के लिए यह लड़ाई लड़ रहा है, उसी उजाले को बचाने की कवायद है- कुँवर नारायण की कविता। यह उजाला नैतिक साहस का उजाला है-"भरपूर उजाले में रहे उसकी हिम्मत/ दुनिया को ख़बर रहे/ कि एक बहुत बड़े साहस का/ नाम है सम्मेदीन।"[30] कवि को विश्वास है कि सम्मेदीन की मौत के

बाद भी उसका उजाला इस लड़ाई को लड़ेगा। कुँवर जी मनुष्य से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अपने समय की विसंगतियों के खिलाफ़ खड़े होने का नैतिक साहस न खोये। 'कोई दूसरा नहीं' की कविताओं में वैविध्य है। कुँवर नारायण शब्दों की तरफ़ से आदमी को देखने वाले कवि हैं। उनकी कविताएँ व्यापक भावबोध और वृहत चिंतन का प्रमाण हैं। और, इस दृष्टि से 'कोई दूसरा नहीं' उनकी प्रतिनिधि रचना है। 'कोई दूसरा नहीं' के विषय में कुँवर नारायण का मत दृष्टव्य है- "कोई दूसरा नहीं में जीवन के ज्यादा से ज्यादा बड़े अनुभव-क्षेत्र के स्पर्श की कोशिश है। खुले मन से अपने भीतर और अपने चारों ओर देखा है, और वह जो मुझे मूल्यवान लगा उसे कविता में बचाना चाहा है।"[31]

- **इन दिनों(2002):**

'इन दिनों' तक आते-आते कुँवर नारायण की कविता में चिंतन एवं अनुभूति का स्वर प्रौढ़ हो चला, इतना प्रौढ़ की तमाम तरह की कट्टरताओं के ख़िलाफ़ वह मुठभेड़ कर सके। इस मुठभेड़ में कुँवर जी की लेखनी कभी अकेली नहीं रही। कभी वह कबीरदास को साथ ले चलती तो कभी ख़ुसरो को, कभी सरहपा को अपना ढाल बनाती तो कभी काफ़्का को और इन सब साथी के साथियों मिलकर वह मनुष्य और मनुष्यता के लिए बेहतर दुनिया का निर्माण करती रही। इस संग्रह की कविताओं का कैनवास बहुरंगी चित्रों से भरा है। निस्संदेह इन रंगों का उपजीव्य कुँवर नारायण की चिंतन एवं अनुभूति है। एक ऐसे समय में जब मनुष्य के भीतर नफ़रत को इंजेक्ट कर उसे एक हिंसात्मक हथियार में तब्दील करने की प्रक्रिया लगातार जारी है, उस समय में कुँवर नारायण की प्रबुद्ध चेतना 'एक अजीब-सी मुश्किल' जैसी कविता को रचने का साहस करती है। वे जब अंग्रेजों से नफ़रत करना चाहते हैं तो शेक्सपियर का एहसान उन्हें याद आने लगता है। मुसलमानों से नफ़रत करना चाहते हैं तो ग़ालिब को सामने पाते हैं। सिखों से नफ़रत करने की सोचते हैं तो गुरुनानक का ध्यान आता है और सर सजदे में झुक जाता है। इस नफ़रत और प्रेम के

अंतर्द्वंद्व से गुज़रते हुए कुँवर नारायण जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं वह हमें कुँवर जी की अनुभूति के उस पक्ष से साक्षात्कार कराता है, जहाँ प्रेम सर्वोपरि है। इस कविता की निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"हर समय

पागलों की तरह भटकता रहता

कि कहीं कोई ऐसा मिल जाए

जिससे नफ़रत करके

अपना जी हल्का कर लूँ।

पर होता है इसके ठीक उल्टा

कोई-न-कोई, कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी

ऐसा मिल जाता

जिससे प्यार किए बिना रह ही नहीं पाता।"[32]

यह कविता मनुष्य की संकीर्ण और आरोपित सोच पर उदार एवं बृहत्तर जीवन-मूल्य के विजय का प्रतीक है। नफ़रत और हिंसा की मनोवृत्ति को मैं आरोपित सोच इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि यह मानव का मूल स्वभाव नहीं है। कवि का हृदय नफ़रत के तमाम तर्क को खारिज़ कर जीवन में प्रेम की अनिवार्यता को स्वीकार करता है। यह स्वीकारोक्ति का साहस और भीड़ में ख़ुद को शामिल न करने की बुद्धिमत्ता कुँवर नारायण ने अनुभूति के गहरे सागर में पैठकर हासिल किया है। 'आजकल कबीरदास'में वे कबीर के उस चरित्र को उद्घाटित करते हैं जो नहीं मानता था कोई फ़र्क 'दास' और 'प्रसाद' में, 'नाथ' और 'दीन' में, 'गुप्त' और 'नारायण' में 'हिन्दू' और 'मुसलमान' में। कुँवर नारायण की अनुभूति का दायरा मानव मात्र तक सीमित नहीं है।

‘शहर और आदमी’ शीर्षक कविता में वे एक ज़रूरी सवाल उठाते हैं, “सवाल अब आदमी की ही नहीं/ शहर की ज़िन्दगी का भी है...अक्सर उसे भी/ एक बीमार आदमी की तरह दर्द से कराहते हुए सुना गया है।”[33]शहर की ज़िन्दगी का फ़िक्र और उसके कराहने को सुन पाना अनुभूति की गहराई में पैठे बगैर संभव नहीं है। वे शहर के लिए फ़िक्रमंद हैं ठीक वैसे ही जैसे मनुष्य के लिए फ़िक्रमंद हैं। हर वह गतिविधि उनकी चिंता की परिधि में है जो मनुष्य को लहूलुहान करने पर आतुर है। कवि को चिंता है हमारी और इस दुनिया की जो हमसे बनती है, जिनसे हम बनते हैं। इसलिए उनकी चिंतन और अनुभूति के दायरे में मनुष्य की नैतिकता भी है, उसका मूल्य भी है और उसके इर्द-गिर्द की पारिस्थितिकी भी है। इसलिए कवि को एक वृक्ष बूढ़ा चौकीदार-सा मालूम पड़ता है जो कवि के घर लौटने पर हमेशा दरवाज़े पर तैनात मिलता था। और, जिसे काट दिये जाने से कवि अपने जीवन में एक रिक्तता महसूस करते हैं। ध्यातव्य है कि मनुष्य ने पर्यावरण के दोहन में कोई कसर नहीं छोड़ी है, ऐसे समय में ‘एक वृक्ष की हत्या’ जैसी कविता के माध्यम से कुँवर नारायण पर्यावरण की इस उपेक्षा की ओर भी हमारा ध्यान खींचते हैं। कभी पेड़ के बहाने, कभी चिड़ियों के बहाने, कभी फूल, कभी रंग तो कभी बच्चों के बहाने कुँवर नारायण एक ऐसी दुनिया को अपनी कविता के माध्यम से रचते नज़र आते हैं जहाँ मानव-मानव के बीच दूरी न्यूनतम हो- “कविता एक खेल है बच्चों के बहाने/ बाहर भीतर/ यह घर, वह घर/ सब घर एक कर देने के माने/ बच्चा ही जाने।”[34]कवि को मानव-मानव के हृदय के बीच बढ़ती उस दूरी का अनुभव है जिसने व्यक्ति को ‘स्व’ तक सीमित कर दिया है। कवि हम वयस्कों की दुनिया को बच्चों की उस दुनिया में बदल देना चाहते हैं, जहाँ कोई छिपाव-दुराव नहीं होता। कुल मिलाकर इस संग्रह में कुँवर जी की भाव-ऊर्जा और बुद्धि-ऊर्जा का अनूठा संगम देखने को मिलता है। पूरे संग्रह में उनकी काव्य-भाषा गंभीर और संयत नज़र आती है जिससे वे संवेदनात्मक धरातल के गुह्य से गुह्य परत को भेदने में कामयाब हुए हैं।

➢ **हाशिए का गवाह (2009):**

'हाशिये का गवाह' कवि के आत्मबोध एवं जिजीविषा का प्रमाण तो है ही, साथ ही इसमें कई कविताएँ कुँवर जी के उन संस्मरणों पर आधारित हैं जो विदेश-यात्राओं के दौरान उनकी स्मृति का हिस्सा बने। चाहे नाज़िम हिकमत से मुलाक़ात हो या पाब्लो नेरुदा से की गयी भेंट, जब इन्हें कुँवर जी कविता की शक्ल में ढालते हैं। तो वह न सिर्फ़ आत्मीय होता है बल्कि वह साहित्यिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण दस्तावेज बन जाता है। कुँवर जी जब नाज़िम हिकमत को याद करते हैं तो कितनी आत्मीयता से करते हैं उसकी एक बानगी है यह पँक्ति-

"याद हैं उनके भारी, खुरदुरे, किसानी हाथ

मेरे घुटनों पर-हाथों पर-

जब वे उत्साहित होकर

समझाते थे कोई बात ...."[35]

इस पँक्ति में जहाँ एक ओर नाज़िम हिकमत का कुँवर जी से स्नेह वर्णित है वहीं दूसरी ओर 'खुदुरे, किसानी हाथ' जैसे शब्द नाज़िम हिकमत के संघर्ष को बयान करते हैं। ठीक उसी तरह जब वे पाब्लो नेरुदा से हुई भेंट को याद करते हैं तो उन्हें याद आता है भारत को याद करने का पाब्लो नेरुदा का अंदाज़-

"क्या करते हो? कौन हो? कहाँ रहते हो?

"पढ़ता लिखता हूँ :

भारतीय हूँ।"

कुछ देर के लिए वे

डूब गये थे अपने में।

क्या सोच रहे थे वे-

'फ़क़ीर दार्शनिकों का देश?'

बोले-ओह, गाँधी का देश।"[36]

सच में अगर भारत को किसी एक व्यक्ति के रूप में याद किया जाए तो वह गाँधी ही हो सकते हैं। गाँधी जिसे हम विगत वर्षों में लगातार भूलते जा रहे हैं एक पँक्ति से मानो हमारी सामूहिक पहचान बनकर ज़िंदा हो गये हों। आज जब हमारी जुबान पर हिंसात्मक शब्दावलियों का राज है। जब हमने युद्ध की भाषा में बोलना सीख लिया है, तब यकायक किसी का यह याद दिलाना कि यह गाँधी का देश है, हमारी वास्तविक पहचान से हमें अवगत कराना है। कुँवर जी प्रबुद्ध कवि हैं, वे जानते हैं कि इस हिंसात्मक समय को गाँधी की कितनी ज़रुरत है। इसलिए जब पाब्लो नेरुदा को याद करते हैं तो उनका कहा वह शब्द याद आता है जो इस देश की सामूहिक पहचान और मूल प्रवृति है। यह भी सुखद संयोग है कि सन्. 1955 ई. में पाब्लो नेरुदा से हुई इस मुलाकात का गवाह वह स्थान बना जो युद्ध की विभीषिका को झेलकर जीवन की ओर लौट रहा था-

"मैं नेरुदा से मिला था

आधी सदी पहले

एक युद्धाहत नगर में

जो तेज़ी से लौट रहा था

जीवन की ओर।"[37]

इसी संग्रह की एक और कविता जिसका शीर्षक है-"वे जो नहीं जानते" में कुँवर जी गाँधी को एक ऐसे रास्ते के रूप में याद करते हैं जिसपर चलकर यह दुनिया क्रूर से क्रूर समय से लड़ सकता है और आज़ाद हो सकता है। वह गाँधी जिसे 1948 में अपने ही देश में गोलियों से मारा गया, वह गाँधी जिसे रोज मारने की कोशिश की जाती है; वह गाँधी जो हर बार उठ खड़ा होता है यह कहते हुए कि-

"मैं हर समय मौजूद हूँ

एक ऐसा रास्ता जिसपर चलकर

दुनिया की किसी भी अत्याचारी स्थिति से

पाई जा सकती है आज़ादी।"[38]

कुँवर नारायण कविता द्वारा ज़िन्दगी के मायनों को तलाशने वाले कवि हैं इसलिए जब वे ज़िन्दगी पर विचार करते हैं तो भौतिकवादी नज़रिये से नहीं करते हैं। सफलता, असफलता के मूल्यांकन की कसौटी भी वह नहीं रखते, जो दुनिया रखती है। वे जीवन में प्रेम की अहमियत जानते हैं, साथी की अहमियत जानते हैं और इस बात में पक्का यकीन है उनका कि जीवन में कोई भी भौतिक वस्तु कभी भी व्यक्ति को रिप्लेस नहीं कर सकती। कुँवर जी की कविताओं के विषय में बात करते हुए रेखा सेठी लिखती हैं- "कुँवर नारायण जिस सौंदर्यानुभव के कवि हैं, वह दृष्टि हमेशा से वस्तुवाद का विरोध करती रही है।"[39] कुँवर जी मनुष्य की गरिमा को पहचानने वाले कवि हैं इसलिए उनकी कविताओं में मनुष्य और मनुष्य के जीवन का अंतर्विरोध विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हम पाते हैं। उनकी कृति 'हाशिए का गवाह' की आख़िरी कविता है- "उत्तरदायित्व"। कुँवर जी अपनी कविताओं में व्यक्त अंतर्विरोधों और त्रुटियों के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हुए लिखते हैं-

"मैं ईश्वर होता तो

मुक्त कर लेता अपने को

यह कहकर कि सिद्धांततः

मैं अपनी रचनाओं से परे हूँ।

लेकिन मैं मनुष्य हूँ,

भाग नहीं सकता एक मनुष्य होने की जिम्मेदारियों से

xxxxxxxxxxxxxxxxx

स्वीकार करता हूँ

की मेरी ही तरह

मेरी दुनिया भी

मानवीय है।"[40]

अपनी दुनिया के मानवीय होने की यह स्वीकारोक्ति कवि की ईमानदारी का प्रमाण है।

- **कुमारजीव (2015):**

कुँवर नारायण इतिहास की यात्रा से वर्तमान को निर्मित करने वाले कवि हैं। कुमारजीव भी इतिहास के पन्नो में दर्ज़ बौद्ध धर्म से संबंध रखने वाला एकपात्र है जिसको आधार बनाकर कुँवर नारायण ने 'कुमारजीव' नामक काव्य-संग्रह की रचना की। जब किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व काल की सीमाओं को लाँघ जाए तो इसे उस विचार की विजय के रूप में देखा जाना चाहिए जिसे वह व्यक्ति वहन करता है। कुँवर नारायण प्रारम्भ से ही उस चिंतन-धारा के पक्षधर रहे हैं जो

मनुष्य के निरंतर परिष्कार में यकीन रखता है। वे कलाओं और विचारों की शक्ति से परिचित हैं और युद्धों तथा महायुद्धों की निरर्थकता को भी जानते हैं। इसलिए उन्हें कुमारजीव का चरित्र आकर्षित करता है और उसके विषय में कवि लिखते हैं- "यह अनुभूति रोमांचक है कि कैसे मनुष्य की सूक्ष्मतम कलाएँ और विचार, युद्धों और महायुद्धों के बीच भी जगह बना कर बिजलियों की तरह चमकते रहे हैं।"[41]

ग़ौरतलब है कि कुँवर नारायण जब इतिहास या मिथक को अपने काव्य का कथ्य बनाते हैं तो उनका उद्देश्य इतिहास की घटनाओं का पुनः स्मरण मात्र नहीं होता। वे इतिहास की घटनाओं में जीवन की उन सच्चाइयों को तलाशते हैं जो हर देश और काल में अपना महत्त्व रखती हैं। कुमारजीव (344-413 ई.) ईसा की चौथी शताब्दी का होते हुए भी अपने समानान्तर जो समय रचता है वह आज तक जीवित है और उसके विचार इतने प्रासंगिक हैं कि वे चिरकाल तक जीवित रहेंगे। कुमारजीव की वैचारिक चेतना की प्रखरता के विषय में कुँवर नारायण लिखते हैं कि "वह बौद्ध धर्म-ग्रंथों का अनुवादक मात्र नहीं था, एक ऐसा महान विद्वान और विचारक भी था जिसने बौद्ध और भारतीय विचारों को पूरे एशिया में फैलाया।"[42] कुँवर जी अपने इस काव्य-ग्रंथ में कुमारजीव की उस यात्रा को शब्दांकित करते हैं जो केवल भौगोलिक नहीं है अपितु वह एक वैचारिक यात्रा है जिसमें मनुष्यतर होने की संभावनाएँ निहित हैं।कुमारजीव की यह यात्रा जीवन-संघर्ष और जीवन-विवेक के अन्तःसंबंधों को उद्घाटित करने वाली यात्रा है। कुमारजीव का व्यक्तित्व इस बात का प्रमाण है कि विभिन्न संस्कृतियाँ एक दूसरे की प्रतिद्वंद्वी नहीं बल्कि सहायक हैं। कुमारजीव के जीवन और उसके कार्य-क्षेत्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि एक संस्कृति जब दूसरी संस्कृति में पहुँचती है तो यह व्यापक परिप्रेक्ष्य में विकास की यात्रा होती है।

कुमारजीव की महत्ता उसके विचारों की अमरता में है। कुमारजीव के विचारों की इस अमरता को लक्ष्य करते हुए कुँवर नारायण ने लिखा है-

"फिर से जिया जा सकता है कुमारजीव को

जैसे उसने जिया था तथागत को

क्योंकि कोई भी बुद्ध या कुमारजीव

कभी भी मरता नहीं।"[43]

कुँवर नारायण इस बात को समझ रहे थे कि कुमारजीव का जीवन, मात्र बीत चुका जीवन नहीं है बल्कि उसे अपने समय में लाकर पुनः जिया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति तो मर जाता है पर उसके विचार कभी नहीं मरते। अगर हम अपने व्यक्तित्व में निरंतर विकास की आकांक्षा रखते हैं तो हमें अपनी स्मृतियों के प्रति कृतज्ञ होना सीखना होगा क्योंकि हमारी स्मृतियाँ केवल हमारा अतीत नहीं होतीं। जिस तरह बुद्ध के विचार कुमारजीव के लिए अतीत मात्र नहीं थे ठीक उसी प्रकार कुमारजीव के विचार हमारे लिए अतीत मात्र नहीं होने चाहिए। यहाँ इस बात का ज़िक्र भी लाज़मी है कि कुमारजीव, बुद्ध के विचारों और उपदेशों का वाहक और अनुवादक मात्र नहीं था बल्कि बौद्ध और भारतीय विचारों के जिस स्वरूप को कुमारजीव ने सम्पूर्ण एशिया में फैलाया, उनमें कुमारजीव के विचार, उनकी साधनाएँ भी शामिल हैं। यह विचारों की एक बहुत बड़ी ताकत होती है कि जिस भी समय में उसकी आवश्यकता को महसूस किया जाएगा वह उस समय का समकालीन बन जाएगा, जैसे कुमारजीव ने बुद्ध को अपने समय का समकालीन बना लिया ठीक उसी प्रकार कुँवर नारायण ने अपनी इस कृति के माध्यम से कुमारजीव को हमारा समकालीन बना दिया है। कई मायनों में इस कृति में कुमारजीव माध्यम बनता नज़र आता है, कुँवर नारायण की जीवनदृष्टि का। दो अतियों के बीच 'संतुलन-बिन्दु' की तलाश कुमारजीव को भी है और कुँवर नारायण को भी। विसंगतियों से निकलने का रास्ता गृह-युद्धों से नहीं, इसी 'संतुलन-बिन्दु' से होकर गुजरता है। कुँवर नारायण लिखते हैं-

"सुलह क्यों नहीं

क्षमा क्यों नहीं

दो अतियों के बीच से निकलता

एक तीसरा मध्यम-मार्ग क्यों नहीं?

अति को जानो

वहाँ ठहरो मत

लौटो

अपने अन्दर उसी सन्तुलन-बिन्दु पर

जहाँ संभव है

समन्वय।"[44]

इस काव्यकृति को पढ़ते हुए हमें यह अहसास होता है कि कुमारजीव एक व्यक्तिमात्र नहीं है वह जीवन-दर्शन भी है और जीवन-शैली भी। कुमारजीव के माध्यम से कुँवर नारायण ज्ञान और कलाओं के मूल चरित्र को उद्घाटित करते हैं। इस काव्यकृति के माध्यम से कवि ज्ञान की उस परम्परा को अभिव्यक्त करते हैं जहाँ आदान-प्रदान में ही उसकी वृद्धि निहित है। विद्यावान और सत्ताधारी के फ़र्क को दोनों की सोच के फ़र्क से जाना जा सकता है। जहाँ एक ओर तत्कालीन शासकों को कुमारजीव की विद्वता से ज़्यादा उसकी ख्याति लुभा रही थी, वहीं दूसरी ओर "कुमारजीव के लिए दरबार के सम्मान की अपेक्षा / विद्वत्समाज में रहना ज़्यादा अर्थ रखता था।"[45] और, यह संयोग मात्र नहीं है, यह तो उस प्रौढ़ जीवन-बोध से संचालित जीवन-शैली है

जिसकी वजह से कुमारजीव से भी वर्षों पहले सिद्धार्थ नामक एक युवा अपना राजपाट छोड़कर भिक्षुक का जीवन स्वीकार करता है और कालांतर में गौतम बुद्ध कहलाता है।

'कुमारजीव' नामक काव्य-संग्रह में व्यक्त भाव दरअसल आत्मा की उस संगीत की अनुभूति को महसूस करने का प्रयास है जिसे हमने बाहरी दुनिया के शोर में विस्मृत कर दिया है। युद्ध के विध्वंस को सम्राट की तात्कालिक दृष्टि भले ही न देख पाए परन्तु प्रज्ञावान कुमारजीव की दूरदृष्टि इसे देख पा रही थी। इसलिए "वह कूछा नरेश को सलाह देता है-/ यह युद्ध साक्षात् विनाश का आवाह्न है / इसे अस्वीकार कर दीजिये"[46]विडम्बना देखिये, सम्राट बावजूद इसके युद्ध को चुनता है और उस युद्ध में पराजित होता है।

ल्वी-कुआंग जब कुमारजीव को इस युद्ध में जीत के बाद पाया गया 'एक कीमती रत्न' बताता है तो कुमारजीव को आश्चर्य होता है। वह सोचता है कि व्यक्ति के शरीर को तो एक दिन नष्ट हो जाना है फ़िर उसे प्राप्त करने के लिए इतनी हिंसा, रक्तपात कहाँ की समझदारी है? ध्यातव्य है कि कुमारजीव की दृष्टि में व्यक्ति नहीं उसका विचार महत्त्व रखता है और विचार को न कैद किया जा सकता है, न किसी युद्ध के माध्यम से जीता जा सकता है। यह आश्चर्य एक साधक का आश्चर्य है क्योंकि वह दुनिया की नज़र से जीवन को नहीं देख रहा। उसकी अपनी जीवन-दृष्टि उसे फर्क़ तरह से सोचने के लिए प्रेरित करती है-

"आश्चर्य होता

कितना अन्धा है आज भी

युद्धों में आदमी का विश्वास

और कितना कच्चा है

बुद्धिमत्ता, मैत्री और प्रेम में

उसका आत्मविश्वास"[47]

युद्धों में बढ़ता आदमी का विश्वास जिस अज्ञान को दिखाता है आज उसकी जद में पूरी दुनिया है। एक कवि के रूप में यह कुँवर नारायण की विशेषता ही कही जाएगी कि इतिहास की घटनाओं से बगैर छेड़छाड़ किये वे हमारे युगसत्य को हमारे सामने ला पटकते हैं। कविता को पढ़ते-पढ़ते पाठक इतिहास में अपने समय की पुनरावृत्ति देखने लगता है। बहरहाल, कथा आगे बढ़ती है ल्वी-कुआंग का कूछा पर अधिकार होता है। जब कूछा पर अधिकार कर वह कुमारजीव की साधना का उपहास करता है उस दृश्य को शब्दांकित करते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-

"वह गालियों की भाषा में बोलते हुए

स्वयं एक भद्दी-सी गाली में बदल गया लगता था।"[48]

ल्वी-कुआंग, कुमारजीव को लेकर ल्यांगचओ पहुँचता उससे पहले ही वहाँ के सम्राट फ़ू-च्येन का उसके विश्वस्त सेनापति याओ छांग ने वध कर दिया। कुमारजीव के आगामी सत्रह वर्ष ल्यांगचओ में ल्वी-कुआंग की हिरासत में बीतते हैं। यह समय उसके लिए संघर्ष का ज़रूर है परन्तु इस समय भी वह सीख रहा होता है। इस समय को व्यक्त करते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-

"कुमारजीव को कैद करने वाले सन्तुष्ट थे

कि वह उनकी बनायी दीवारों में कैद है

पर वह जानता था कि वह मुक्त है

मुक्ति के एक ऐसे उन्मुक्त असीम में

जिसमें विचार हैं, कल्पनाएँ हैं, भाषाएँ हैं,

साहित्य, इतिहास और ज्ञान-विज्ञान हैं।"[49]

दरअसल कुमारजीव ने इन सत्रह वर्षों में जिस जीवन-शैली को अपना लिया था, उसमें वह नित्य अपना देशकाल स्वयं रच रहा था। अपनी कल्पना में वह कभी बुद्ध के समय में पहुँच जाता था तो कभी बुद्ध को ही अपने समय में खींच लाता था। अद्भुत यात्रा थी वह, जिसमें न भाषा का बंधन था, न विचारों का, न देश की सीमाओं का। वह कैद में होते हुए भी सभी बंधनों से आज़ाद था। इन सत्रह वर्षों में कुमारजीव ने अपनी सृजनात्मकता का सर्वाधिक उपयोग किया। कुमारजीव की विद्वता और क्षमाशीलता धीरे-धीरे ल्वी-कुआंग की कठोरता को पिघला देती है। समय बीतता है और ल्वी-कुआंग, कुमारजीव से प्रभावित होकर उसे अपना सलाहकार बना लेता है।

कुछ सालों बाद जब छांग-आन की सत्ता फ़ू-च्येन के वंशज याओ-शिंग के हाथों में लौटती है। जब फ़ू-च्येन कुमारजीव से यह कहता है कि अब तुम आज़ाद हो तो कुमारजीव को अचरज होता है। कुमारजीव के उस वक्त की मनोदशा को वर्णित करते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-

"सोचता कुमारजीव-

मैंने तो पहले ही अपने को मुक्त कर लिया है

घरों और नगरों से

नया नगर, नया घर, नयी दीवारें,

नया बन्दीघर-

जो तुम प्रदान करोगे

वे मुझे बाँध नहीं सकेंगे

एक निश्चय में बदल चूँकि है

मेरे 'होने' की वजह।"[50]

कुमारजीव की उपर्युक्त मनोदशा बौद्धिक वर्ग और सत्ता के संघर्ष को भी दिखाता है। सत्ता चाहती है कि 'कलम' उसके अधीन रहे लेकिन आज़ाद ख़याली कलम का मूल-धर्म भी है और उसकी प्रवृत्ति भी। कुमारजीव जानता है कि उसे राजा जो सुख देना चाहते हैं, सृजन का सुख उससे सर्वथा भिन्न और श्रेष्ठ है। इसलिए राजदरबार में रहते हुए भी कुमारजीव ने अपने आत्मिक विकास पर बल दिया।

➢ **सब इतना असमाप्त (2018):**

'सब इतना असमाप्त' का प्रकाशन कुँवर नारायण के मृत्युपरांत हुआ है। इस पुस्तक की अधिकांश कविताओं का चुनाव कुँवर नारायण अपने जीवनकाल में कर चुके थे। बाद में उनकी पत्नी भारती नारायण और पुत्र अपूर्व नारायण ने इस संकलन में उनकी फ़ाइलों से कुछ अन्य कविताओं को शामिल कर लिया। साथ ही उनके द्वारा लिखित कुछ ग़ज़ल एवं गीतों को भी यहाँ संग्रहित कर लिया गया है। उम्र के आख़िरी पड़ाव में कुँवर नारायण की मनःस्थिति को अभिव्यक्त करती कई कविताओं को इस संकलन में स्थान दिया गया है तो वहीं दूसरी ओर बिगड़ते हुए समाज की चिंता भी कुछ कविताओं में परिलक्षित होती है। इस संकलन के प्रारंभ में भारती नारायण लिखती हैं, "पूरे संकलन में एक ख़ास तरह की प्रबुद्ध उदासी का भाव है।"[51]

इस संग्रह की कविताएँ कुँवर नारायण के व्यक्तित्व के उस पक्ष की गवाही हैं जहाँ समाज और पर्यावरण उनकी चिंता के केंद्र में है। इस संग्रह की प्रारंभिक कविताओं में एक महत्वपूर्ण कविता है 'ज़रा देर से इस दुनिया में'।

यह हमारे लिए महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि यह हमारे समय की फ़िक्र में रची गई कविता है। आज जंगलों को काटकर जिस तरह हमने अपनी दुनिया को कंक्रीट के जाल में तब्दील कर दिया है, वह किसी भी विवेकवान व्यक्ति के लिए चिंता का विषय होना चाहिए। हमने जिस सभ्यता को विकसित किया है वह आत्मघाती है। प्रकृति जो कभी हमारी सहचर्य हुआ करती थी उसे हमने अपना प्रतिद्वंद्वी बना लिया। कवि इसी चिंता में लिखते हैं-

"मैं ज़रा देर से इस दुनिया में पहुँचा,

तब तक पूरी दुनिया,

सभ्य हो चूँकि थी,

सारे जंगल काटे जा चुके थे,

जानवर मारे जा चुके थे,

वर्षा थम चूँकि थी,

और तप रही थी पृथ्वी,

आग के गोले की तरह..."[52]

युद्ध की व्यर्थता का बोध कुँवर नारायण की कई कविताओं में देखने को मिलता है। इस संग्रह की एक कविता है 'आवाजें'। युद्ध हमारे अंतःकरण की उन आवाज़ों को तोड़ देता है जो मानवता के लिए मूल्यवान है। शांति का रास्ता युद्ध से होकर नहीं गुज़रता है। आज जब देश

अपनी-अपनी सीमाओं में शांति बहाल करने के लिए युद्ध का आवाह्न करते हैं तथा एक दूसरे की सेनाओं को रक्त-रंजित करते हैं, ऐसे वक्त में कुँवर नारायण की यह कविता महत्वपूर्ण जान पड़ती है। कुँवर नारायण की निम्न पँक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"ये चिल्लाहटें,

यह कोलाहल,

दो सेनाओं के टकराने की आवाज़ है।

जो लड़ कर पाना चाहते थे शान्ति

यह कराह

उनकी निराशा की आवाज़ है।"[53]

मानव इतिहास में युद्ध की विभीषिका सर्वज्ञात है, बावजूद इसके सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने मनुष्य का शिकार करने के लिए नये-नये तरीके विकसित कर लिए हैं। यह पूरी प्रक्रिया क्रूरता के इतने स्तरों से होकर गुज़रती है कि इसे एक प्रज्ञावान व्यक्ति मानवोचित कर्म तो नहीं कह सकता है। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी भला कौन भूल सकता है। आज भी मानवता उस दिन को याद कर शर्मसार होती है लेकिन मनुष्य ने युद्ध का मार्ग आज तक नहीं छोड़ा। मनुष्य का युद्ध में गहराता विश्वास कुँवर नारायण को विचलित करता है। कुँवर नारायण मनुष्य में उस विश्वास की खोज में हैं जो आदमी को इंसान बनाता है। उन्हें उन शब्दों की तलाश है जो हमारे जीवन और भाषा से दूर होते जा रहे हैं। ये वो शब्द हैं जिनकी अनुपस्थिति में ज़िन्दगी अपने मायने खोने लगती है। कुँवर नारायण के काव्य-संग्रह 'सब इतना असमाप्त' में एक कविता है- 'शब्द जो खो जाते हैं'। इस कविता में कवि की इसी चिंता का बयान है। यह कविता 'पवित्रता' शीर्षक से पहले प्रकाशित हो चूँकि थी। इसमें कवि लिखते हैं-

"ज़िन्दगी से पलायन करते जा रहे हैं

ऐसे तमाम तिरस्कृत शब्द

जो कभी उसका गौरव थे।"[54]

ये वो शब्द हैं जिनके ज़िन्दगी में होने से ज़िन्दगी को अर्थ मिलता है। कुँवर नारायण ने 'प्रेम' को भी ऐसा ही एक शब्द माना है। एक ऐसा शब्द जो अब व्यवहार में नहीं है। वह पलायन कर चुका है हमारी ज़िन्दगी से, और भाषा से भी। यह हमारे समय का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि प्रेम जैसी मनोवृत्ति का हमने तिरस्कार किया है। हमने हिंसात्मक शब्दावलियों को ईज़ाद किया है-जीवन में भी, और भाषा में भी। परिणामस्वरूप हिंसा, नफ़रत हमारे व्यवहार में शामिल होता जा रहा है और करुणा, स्नेह जैसे भावों से हम हर रोज़ थोड़ा दूर होते जा रहे हैं। क्षमा, सहनशीलता जैसे शब्दों की ताक़त को हमने बिसरा दिया है। कुँवर नारायण के इसी संग्रह में एक कविता है-'जब वह नहीं रहता'। यह कविता 'क्षमा', 'सहनशीलता' जैसे भावों को केंद्र में रखकर लिखी गयी है। जब ये नहीं रहते तब इसकी जो भयानक अनुपस्थिति महसूस होती है वह यूँ ही नहीं है, उसके यह मायने हैं कि यह हमारी ज़िन्दगी की अमूल्य शक्ति है।

'सब इतना असमाप्त' की कविताएँ घनीभूत चिंतन की ऐसी अभिव्यक्ति मालूम होती हैं, जिन्हें शब्दों में बयान कर पाना एक दुष्कर कार्य है। इस संग्रह की कई कविताएँ हमें यह अहसास दिलाती हैं कि अतीत सिर्फ़ व्यतीत नहीं होता बल्कि वह कभी-कभी हमारे वर्तमान को कुरेदता है। अतीत का वर्तमान में यह प्रवेश बिल्कुल नये रूप में होता है। उस समय की मनःस्थिति को वर्तमान की अँधी रफ़्तार कचोटती है। और मन में बार-बार यह प्रश्न उठता है कि "आगे बढ़ने की हड़बड़ी में/ कहीं पीछे तो नहीं छुट गईं/ वे सुरम्य जगहें/ जहाँ हम पहुँचना चाहते थे"[55]

इसी संग्रह में 'कुछ छोटी कविताएँ' शीर्षक से 14 छोटी-छोटी कविताएँ हैं। जो अपने रूप और कथ्य में अलग-अलग होते हुए भी महत्वपूर्ण हैं। एक कविता में कुँवर नारायण लिखते

हैं कि "वे भी ताक़त हैं समाज की/ जिनके पास सेनाएँ नहीं/ केवल कुछ सपने हैं/ और एक साहस/ नागफनी के जंगल में उगते फूलों की तरह/ जोखिम उठाने का"[56] कौन हैं वे लोग जो नागफनी के जंगल में भी फूलों की तरह उगने का साहस कर लेते हैं। उनका चेहरा कुछ-कुछ दाभोलकर, पानसरे और कलबुर्गी के चेहरे से ज़रूर मेल खाता होगा। तभी तो उनकी नृशंस हत्या कवि को विह्वल कर देती है-

"जितना ही खुश रखना चाहता हूँ

उतनी ही उदास होती जाती हैं मेरी कविताएँ

विह्वल प्रार्थनाओं में बदल जाते हैं शब्द"[57]

कुल मिलाकर 'सब इतना असमाप्त' तत्कालीन समय में कवि की मनःस्थिति का दस्तावेजीकरण है। इस संग्रह का कैनवास काफी विस्तृत है इसलिए इसका पाठ अतिरिक्त धैर्य की मांग करता है। ये कविताएँ युद्ध और हिंसा से चोटिल समय में मैत्रीपूर्ण स्पर्श की तरह मालूम होती हैं। इस संग्रह की कविताओं में उन क्षणिक अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति है जो कभी-कभी जीवन से भी बड़ी हो जाया करती हैं। जो नैतिक-साहस और प्रेम का अकुंठ भाव कुँवर नारायण की कविता को विशिष्ट बनाता है वह इस संग्रह में भी आदि से अंत तक मौजूद है। चिंतन एवं अनुभूति का ऐसा संगम दुर्लभ है।

सारतः यह कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण की कविताओं में चिंतन एवं अनुभूति का अनूठा मिलन है। उनका चिंतनशील विवेक उन चिरंतन मूल्यों का संधान करता है जो मानव-जीवन को समृद्धि के मार्ग पर प्रशस्त कर सके। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि उनके काव्य-लेखन के विविध पड़ाव हैं। 'कुमारजीव' का कुँवर नारायण 'चक्रव्यूह' के कुँवर नारायण से भिन्न है। यह भिन्नता भाषा एवं कथ्य दोनों स्तरों पर है। कुँवर जी की कविता उनकी जीवन-दृष्टि का प्रमाण है और कवि की जीवन-दृष्टि निरंतर प्रौढ़ होती गयी है, निरंतर

विकसित होती गयी है। उनकी कविता खुद भी विकासशील है और अपने पाठकों के चित्त को भी विकसित करती है। आवश्यकता है उनकी कविताओं को बार-बार पढ़े जाने की तथा विभिन्न संदर्भों से जोड़कर पढ़ने की क्योंकि अपने हर पाठ के साथ ये कविताएँ एक नये पक्ष को उजागर करती हैं।

संदर्भ सूची:

1. कुँवर नारायण,आज और आज से पहले, पृष्ठ-123
2. (सं) यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण उपस्थिति,पृष्ठ-29
3. कुँवर नारायण,चक्रव्यूह, पृष्ठ-43
4. (सं) यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण : उपस्थिति, पृष्ठ-37
5. वही, पृष्ठ-50
6. कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, पृष्ठ-27
7. वही,पृष्ठ-38
8. वही,पृष्ठ-92
9. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-05
10. वही,पृष्ठ-20
11. वही, पृष्ठ-17
12. (सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-39
13. (सं) यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-52
14. कुँवर नारायण, अपने सामने,पृष्ठ-11
15. वही, पृष्ठ-17
16. वही,पृष्ठ-13
17. वही, पृष्ठ-91
18. (सं) यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण : उपस्थिति, पृष्ठ-168
19. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-13
20. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-9
21. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-9

22.वही, पृष्ठ-12

23.वही, पृष्ठ-106

24.वही,पृष्ठ-95

25.(सं) यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण : उपस्थिति, पृष्ठ-139

26.कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं,पृष्ठ-07

27.वही, पृष्ठ-9

28.वही, पृष्ठ-14

29.वही, पृष्ठ-72

30.वही,पृष्ठ-18

31.(सं) विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार : कुँवर नारायण, पृष्ठ-114

32.कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-10

33.वही, पृष्ठ-21

34.वही, पृष्ठ-46

35.कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-17

36.वही, पृष्ठ-20

37.वही,पृष्ठ-20

38.वही, पृष्ठ-31

39.(सं) रेखा सेठी,मैं कहीं और भी होता हूँ, पृष्ठ-24

40.कुँवर नारायण, हाशिए का गवाह, पृष्ठ-125-126

41.कुँवर नारायण, कुमारजीव, पृष्ठ-08

42.वही, पृष्ठ-15

43.वही, पृष्ठ-27

44.वही, पृष्ठ-57

45.वही, पृष्ठ-77

46.वही, पृष्ठ-86

47.वही, पृष्ठ-97

48.वही, पृष्ठ-89

49.वही, पृष्ठ-124

50.वही, पृष्ठ-143

51.कुँवर नारायण, सब इतना असमाप्त, पृष्ठ-06

52.वही,पृष्ठ-13

53.वही,पृष्ठ-16

54.वही,पृष्ठ-20

55.वही,पृष्ठ-37

56.वही,पृष्ठ-41

57.वही, पृष्ठ-26